कहानी : नई-पुरानी

कहानी : नई-पुरानी

हिन्दी के प्रतिनिधि कहानीकारों की श्रेष्ठतम
कहानियों का संग्रह

सम्पादक
डॉक्टर रघुबीरसिंह डी० लिट०

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली : बम्बई : नई दिल्ली

मूल्य दो रुपये

प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, दिल्ली।

मुद्रक—गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली।

दो शब्द

हिन्दी में अनेकानेक कहानी-संग्रहों के होते हुए भी इस एक और संग्रह को तैयार करके प्रकाशित करवाने का वास्तविक कारण रुचि-वैचित्र्य ही हो सकता है। इस संग्रह की कहानियों का चुनाव करते समय केवल इसी बात को ध्यान में रखा गया है कि वे वास्तव में सुन्दर, मनोरंजक तथा कलापूर्ण हों।

यह संग्रह न तो हिन्दी-कहानी-साहित्य का प्रतिनिधि संग्रह कहा जा सकता है और न उसमें दी गई कहानियों का चुनाव ही इस दृष्टि-कोण से किया गया है। पुस्तक का कलेवर बढ़ जाने की आशंका से इस संग्रह में कहानियों की संख्या भी नहीं बढ़ाई जा सकी, जिससे अनेकों सुप्रतिष्ठित महत्त्वपूर्ण कहानी-लेखकों की रचनाओं को स्थान नहीं दिया जा सका। पुनः प्रगतिशील परम्परा की रचनाओं को लेकर आज भी वाद-विवाद समाप्त नहीं हुआ है तथा उसमें निरन्तर बढ़ने वाले विभागों और उपभेदों के उपयुक्त प्रतिनिधित्व की समस्या भी सामने आई; एवं उस प्रकार की रचना को न चुनना ही हमने श्रेयस्कर समझा।

आज तो एक साधारण पाठक के हृदय में भी साहित्य-समीक्षा के बारे में बहुत-कुछ जानने की एक अभूतपूर्व जिज्ञासा जाग्रत होती रहती है। इस महत्त्वपूर्ण बात को दृष्टि में रखकर यह कहानी-संग्रह विश्वविद्या-लयों के छात्रों के अध्ययनार्थ भी काम में आ सकता है। छात्रों तथा हिन्दी के अन्वेषी पाठकों की सुविधा के लिए इस संग्रह के आरम्भ में 'कहानी-कला और उसका विकास' शीर्षक एक संक्षिप्त विवेचना भी जोड़ दी गई है। स्थानाभाव के कारण उसके अन्त में दिया हुआ 'हिन्दी-कहानी-साहित्य का प्रारम्भिक विकास' अंश बहुत ही संक्षेप में

लिखना पड़ा। ऐसी दशा में कई सुप्रतिष्ठित महत्त्वपूर्ण कहानी-लेखकों के नाम का निर्देश छूट जाना भी स्वाभाविक है। इसी कारण सन १९३५ के बाद की नई प्रवृत्तियों एवं तब के प्रतिनिधि कहानी-लेखकों की भी समुचित विवेचना नहीं की जा सकी। यह अन्तिम युग हमारे इतना निकट है और इसमें इतने अधिक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं कि उन सबको ठीक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक अनुदर्शन में रखकर उनकी ठीक-ठीक विवेचना करने के लिए अभी उपयुक्त समय नहीं आया है।

यदि इस संग्रह से पाठकों का मनोरंजन हुआ और भूमिका भाग में दी गई विवेचना से उनकी जिज्ञासा यत्किंचित् भी तृप्त हो पाई तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

रघुबीर-निवास
सीतामऊ (मालवा)

—रघुबीर सिंह

क्रम

कहानी-कला और उसका विकास

व्यस्तता से पूर्ण समयाभाव वाले इस काल में कहानी-साहित्य की आशातीत उन्नति तथा वृद्धि हुई है। कहानी-लेखन आज साहित्य में एक स्वतन्त्र अनूठी कला के रूप में विकसित हो चुका है और दिनोंदिन उसका प्रस्फुटन होता जा रहा है। साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा इसकी लोकप्रियता कहीं अधिक बढ़ी हुई है, जिसमें आधुनिक काल की परिस्थितियाँ एवं उसकी विशिष्ट प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से सहायक हुई हैं। वास्तव में यह आधुनिक कहानी सुविस्तृत लोकप्रिय उपन्यासों का ही संक्षिप्त स्वरूप है, परन्तु अपने पिछले स्वतन्त्र कलात्मक विकास के कारण आज साहित्य-शास्त्र में इसने अपना अलग ही विशिष्ट स्थान बना लिया है। सारी ऐतिहासिक या साहित्यिक खोज के बाद भी किसी प्रकार यह बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती कि कथा-साहित्य की सर्व प्रथम उत्पत्ति कहाँ और किस रूप में हुई थी। परन्तु यह बात तो निर्विवाद रूपेण मानी जा सकती है कि इसका अस्तित्व, किसी भी रूप में क्यों न हो, बहुत ही प्राचीन काल से चला आया है और सब देशों में कहानी-साहित्य विद्यमान रहा है। साहित्य के अन्य अंगों की ही तरह कथा-साहित्य के रूप, कला, आदि पर भी देश, काल, संस्कृति एवं स्थानीय परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता रहा है और विभिन्न स्थानों में वह अलग-अलग रूप में विकसित हुआ है। आज का उसका वह प्रचलित रूप उसके प्राचीन स्वरूप से बहुत ही भिन्न है।

कहानी की परिभाषा

कहानी, गल्प, लघु-कथा अथवा आख्यायिका आदि विभिन्न नामों में एक ही प्रकार के साहित्य का निर्देशन होता है। आज की कहानी का

स्वरूप बहुत ही विकसित हुआ है और उसकी कला एवं प्रकारों में इतनी अधिक विभिन्नताएं आ गई हैं कि उन सबको एक ही परिभाषा के सुनिश्चित घेरे में बाँध सकना अत्यन्त कठिन है। प्रत्येक साहित्यिक आलोचक या लेखक ने अपने-अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से कहानी की परिभाषा की है। गद्य-साहित्य को आधुनिकतम रूप प्रदान करने वालों में अमेरिका के सुप्रसिद्ध गल्प-लेखक एडगर एलिन पो प्रमुख हैं। उन्होंने कहानी की परिभाषा इस प्रकार की थीः—

"लघु कथा एक ऐसा आख्यान है जो इतना छोटा हो कि एक ही बैठक में पूरा पढ़ा जा सके, जो उसके पाठक पर किसी एक प्रभाव को ही उत्पन्न करने के लिए लिखा गया हो और ऐसा निर्दिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में सहायक न हो सकने वाली सारी बातें जिसमें से छोड़ दी गई हों, तथा जो स्वतः सर्वथा सम्पूर्ण हो।"[1]

हिन्दी के सुप्रतिष्ठित कहानी-लेखक प्रेमचन्द जी के मतानुसार कहानी की रूप-रेखा निम्न लिखित होती हैः—

"गल्प एक ऐसी रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव जीवन का सम्पूर्ण तथा बृहद् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। न उसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का सम्मिश्रण होता है। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं, जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि यह एक ऐसा गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।"

श्यामसुन्दरदास जी ने नाटकीय तत्त्वों को प्रमुखता प्रदान करते हुए लिखा

"A short story is a narrative short enough to be read in a single sitting, written to make an impression on the reader, excluding all that does not forward that impres sion, and is complete and fiinal in itself."

है कि—"आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर किया हुआ नाटकीय आख्यान है।"

इसी प्रकार आख्यायिका की अनेकों परिभाषाएं उद्धृत की जा सकती हैं, परन्तु अपनी विकासशीलता के कारण कहानी के इतने अधिक रूप-रंग सामने आए हैं कि इन सभी परिभाषाओं में निर्दिष्ट विशेषताओं से समावृत होते हुए भी वह सर्वथा उनमें वर्णित आदर्शों या लक्षणों के भीतर नहीं समा सकती। अपने इस विकसित रूप में कहानी मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती हुई अनेकानेक घटनाओं का चित्रण करती है। उसमें वैयक्तिक दृष्टिकोण तथा तन्मयता का प्राधान्य होता है, किन्तु उसमें संवेदना या मनोभाव का प्रदर्शन करने के लिए घटनाओं या कथोपकथन का आलम्बन लेना अत्यावश्यक हो जाता है। घटना और तथ्य का निरूपण करते हुए भी कहानी में वैयक्तिकता बनी रहती है एवं पात्रों के समावेश, चरित्र-चित्रण और भाव-निरूपण द्वारा प्रभावात्मक ढंग से निश्चित उद्देश्य की अभिव्यक्ति करती हुई कहानी स्वतः पूर्ण होती है। कहानी की विभिन्न परिभाषाओं तथा उसके अनेकानेक आदर्शों के बाहुल्य के होते हुए भी कहानियों में प्रायः पाई जाने वाली एकता के आधार पर कहानी के विभिन्न तत्त्वों या उसके स्वरूपों की विवेचना की जा सकती है।

कहानी के तत्त्व

कहानी-लेखन के कोई सुनिश्चित या परम्परागत अनिवार्य नियम न होने पर भी कहानी का निर्माण कुछ आवश्यक तत्त्वों के आधार पर होता है, जिन पर यहाँ संक्षेप में विचार किया जायगा।

कथा-वस्तु अथवा वस्तु-विन्यास

वस्तुतः कथावस्तु कहानी रूपी शरीर में हड्डियों के समान है। भाषा, भाव, चरित्र-चित्रण, शैली आदि अन्य सब तत्त्वों के विद्यमान होते हुए भी कथा-वस्तु-विहीन कहानी में अत्यावश्यक सरसता तथा किसी प्रकार की गति के लिए समुचित आधार का अभाव ही रहेगा। कथावस्तु की रचना तथा उसका क्रमिक विकास अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से सर्वथा स्वाभाविक रूप में होना चाहिए।

प्रत्येक घटना से पहले उसके कारणों का विवेचन रहता है। पात्रों के कार्यों का विवरण देने से पहले उसका मन्तव्य स्पष्ट होता जाता है। यों घटनाओं और पात्रों के आधार पर सम्मिलित रूप से कथानक लेखक के मन्तव्य की अभिव्यक्ति करता हुआ आगे बढ़ता है। वस्तु-विन्यास में घटनाओं की प्रमुखता होती है। उसके मुख्य अंग प्रधानतया चार होते हैं:—

(१) **प्रस्तावना भाग** में विभिन्न पात्रों का वैयक्तिक परिचय संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें उनकी चारित्रिक विशेषताओं के साथ उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी बता दिया जाता है। कहानी के वातावरण, तत्कालीन या तत्स्थानीय सामाजिक स्थिति, और अन्य आवश्यक तथ्यों का विवरण भी प्रस्तावना में संकेत, वार्तालाप या वर्णन द्वारा किया जाता है।

(२) **मुख्यांश** में कथा की प्रमुख घटना या चरित्र-सम्बन्धी संघर्ष, क्षीण या प्रबल रूप में प्रारम्भ हो जाता है, जो अगले भाग क्लाइमेक्स (=पराकाष्ठा) में पहुँचकर चरम सीमा को प्राप्त होता है। इस मुख्यांश में ही वस्तुतः घटनाओं का उत्थान प्रारंभ होता है जो आगे चलकर उग्र रूप धारण कर लेती हैं। संघर्ष की यह स्थिति अत्यन्त स्वाभाविक रूप से उपस्थित होती है और उसका विकास पात्रों की स्थिति और चरित्रों की विशेषताओं के अनुरूप ही समुचित ढंग से होना चाहिए। इसमें किसी अस्वाभाविकता या चमत्कारी तत्त्वों से पाठक के हृदय में कहानी तथा उसके वातावरण के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाना अनिवार्य है।

(३) **क्लाइमेक्स** (=पराकाष्ठा) में उस संघर्ष के साथ ही पाठक के औत्सुक्य की भी चरम सीमा हो जाती है। जिस परिस्थिति, घटना-प्रवाह अथवा संघर्ष को लेकर लेखक जिस कहानी की रचना करता है वह प्रस्तावना में प्रारम्भ होकर मुख्यांश में वृद्धि को प्राप्त होती है। अन्त में उसके पराकाष्ठा को पहुँच जाने के भाग विशेष को क्लाइमेक्स (=पराकाष्ठा) कहा जाता है। कहानी का सारा घटना-क्रम, वातावरण, चरित्रों का विकास, कथोपकथन आदि सभी उपादान इस क्लाइमेक्स की तैयारी में योग देते हैं।

इसी चढ़ाव की ओर बढ़ती हुई सारी कहानी अप्रत्याशित रूप से चरम सीमा पर पहुँचती है और पाठक के कौतूहल का अन्त तब चमत्कारिक ढंग से एकबारगी प्रारम्भ हो जाता है।

(४) **पृष्ठ-भाग**—उतार एवं अन्त—में कहानी का परिणाम निहित होता है। वातावरण, घटनाओं और चरित्रों के पूर्ण विकास के बाद जब कथा का अन्त होता है तब उसके सम्पूर्ण रहस्य का उद्घाटन इसी पृष्ठ भाग में किया जाना चाहिए। इधर कई विचार-प्रेरक, समस्या-मूलक रहस्यपूर्ण कहानियों में इस पृष्ठ-भाग में भी परिणाम प्रकट न करके उसे पाठक के विचारार्थ उसकी कल्पना पर ही छोड़ दिया गया है। पुनः कुछ कहानियों में चमत्कारपूर्ण नाटकीय अन्त करने के उद्देश्य से कथानक की समाप्ति क्लाइमेक्स पर पहुँचने के साथ ही कर दी जाती है, जिससे कि उस अन्त का पाठक के हृदय पर चिरस्थायी प्रभाव पड़े।

कथा-वस्तु के इन चारों अंगों का सापेक्षिक परिमाण प्रधानतया प्रत्येक लेखक की ही नहीं उस कहानी विशेष के भी कथानक, लेखन-कला, शैली आदि पर निर्भर रहता है। परन्तु उसमें अनावश्यक घटनाओं, असम्बद्ध तथ्यों और अस्वाभाविकता का समावेश नहीं होना चाहिए। जीवन की किसी भी घटना को लेकर कथा-वस्तु के रूप में उसका उपयोग किया जा सकता है, और लेखक अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति द्वारा नगण्य वस्तु को भी उत्कृष्ट वस्तु-विन्यास के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। मौलिकता के साथ ही किसी भी कथा-वस्तु को सफल कहानी का रूप देने के लिए उपयुक्त वातावरण, समुचित पृष्ठ-भूमि तथा सुसम्बद्ध योजना भी अत्यावश्यक होती है।

चरित्र-चित्रण

आधुनिक कहानियों में कथानक से भी कहीं अधिक महत्त्व उसमें किये गए चरित्र-चित्रण को दिया जाता है। परन्तु कहानी में प्रमुख पात्र के भी सम्पूर्ण चरित्र पर प्रकाश डालना कदापि सम्भव नहीं। वहाँ कहानी के वस्तु-विन्यास से सम्बद्ध चरित्र के पहलू विशेष पर प्रकाश

डाला जाता है जिससे उस कहानी द्वारा अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न किया जा सके! पात्रों का चरित्र-चित्रण करती हुई मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन करने वाली कहानियाँ ही आजकल सर्वश्रेष्ठ समझी जाती हैं। मनोविज्ञान के विशेष ज्ञाता, मानवीय भावनाओं के उतार-चढ़ाव तथा हृद्गत अन्तर्द्वन्द्व को ठीक तरह समझ सकने वाले या स्वयं अनुभूति-प्राप्त कुशल लेखक ही सफलतापूर्वक चरित्र-चित्रण-प्रधान कहानियाँ लिख सकते हैं। यह सत्य है कि कहानी में आने वाले सारे पात्रों की सृष्टि लेखक की कल्पना द्वारा ही होती है तथापि एक बार उनका सृजन कर देने के बाद प्रत्येक पात्र का अपना स्वतन्त्र ही अस्तित्व हो जाता है और तब कहानी-लेखक के लिए यह अत्यावश्यक हो जाता है कि वह उस पात्र-विशेष में उत्पन्न हो सकने वाली आन्तरिक प्रवृत्तियों पर पूरा-पूरा विचार करके ही सूक्ष्म दृष्टि से उनको आगे चलावे। जहाँ ऐसा नहीं होता और पात्र केवल लेखक के हाथ की कठ-पुतली ही बन जाते हैं वहाँ वे निर्जीव, प्रेरणा-विहीन तथा अनाकर्षक ही रह जाते हैं। इसके विपरीत सजीव पात्रों का सृजन होते ही वे पात्र स्वयं लेखक को प्रेरणा देकर उसके अपने भावी विकास का मार्ग दिखाते हैं। इसी वास्तविकता का अनुभव करके सुप्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार थेकरे ने लिखा है—**"मेरे पात्र मेरे वश में नहीं रहते, प्रत्युत मेरी लेखनी उन पात्रों के अधीन हो जाती है।"** पात्रों के स्वाभाविक सजीव विकास के लिए यह अत्यावश्यक हो जाता है कि वह अपने व्यक्तित्व एवं भावनाओं को उन पर आरोपित न करके उन्हें पृथक् ही रखे। विभिन्न पात्रों के विकास को प्रस्तुत करने में उनकी व्यक्तिगत, मानसिक और सामाजिक परिस्थितियों के विवरण से भी बहुत-कुछ सहायता मिल सकती है।

चरित्र-चित्रण के प्रकार

चरित्र-चित्रण के चार प्रमुख प्रकार हैं—(१) वर्णन द्वारा, (२) संकेत द्वारा, (३) कथोपकथन द्वारा और (४) घटनाओं द्वारा।

वर्णन—वर्णन द्वारा चरित्र-चित्रण सीधा या प्रत्यक्ष रूपेण किया जा सकता है अथवा विश्लेषणात्मक ढंग से लेखक स्वयं पात्रों के चरित्र पर प्रकाश

डालता है। प्रसाद जी द्वारा लिखित 'गुण्डा' कहानी का यह उदाहरण देखिए—

"वह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियाँ नहीं पड़ी थीं। वर्षा की झड़ी में, पूस की रातों की छाया में, कड़कती हुई जेठ की धूप में नंगे शरीर घूमने में वह सुख मानता था। उसकी चढ़ी मूँछें बिच्छू के डंक की तरह देखने वालों की आँखों में चुभती थीं। उसका साँवला रंग साँप की तरह चिकना और चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा दूर से भी ध्यान आकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा, जिसमें सीप के मूठ का बिछुआ खुसा रहता था। उसके घुँघराले बालों पर सुनहले पल्ले के साफे का छोर, उसकी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊँचे कन्धे पर टिका हुआ चौड़ी धार का गँडासा, यह थी उसकी धज। पन्जों के बल पर जब वह चलता तो उसकी नसें चटाचट बोलती थीं। वह गुण्डा था।"

संकेत—चरित्र-चित्रण की उक्त विवरणात्मक प्रणाली की अपेक्षा आजकल संकेतात्मक प्रणाली को अधिक उपयुक्त और कलात्मक समझा जाता है। पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख करने में यह संकेतात्मक प्रणाली अवश्य ही अधिक उपयुक्त होती है, क्योंकि इनका अनुसरण करके लेखक चरित्र-चित्रण के सम्पूर्ण परिणाम से अवगत होने का सारा उत्तरदायित्व पाठक पर ही छोड़ देता है। वह स्वय तो केवल पात्रों की चारित्रिक प्रवृत्तियों का ही उल्लेख करके सतोष कर लेता है। इस प्रणाली का एक सुन्दर उदाहरण यह है—

"वह अभी-अभी जगे थे और पै-पर-पै जम्हाइयाँ लेते हुए पूरी तरह सचेत होने के लिए समाचार-पत्र और प्याली-भर चाय का इन्तज़ार कर रहे थे। सूर्य क्षितिज की ओट में से उभर आया था और उसकी सुनहली रश्मियाँ मोर-पंख की तरह आकाश पर बिखर रही थीं, पूर्व की ओर की तमाम खिड़कियाँ सोने की तरह

जगमगा रही थीं, किन्तु यह चमक केवल खिड़कियों के बाहर ही थी। कमरों के भीतर पहुँचने तक यह प्रकाश भी ईश्वरदास के जीवन की भाँति मैला और ज्योति-शून्य हो जाता था।"

कथोपकथन—परोक्ष या नाटकीय ढंग से चरित्र-चित्रण करने के लिए कथोपकथन की प्रणाली सर्वथा उपयुक्त होती है। पारस्परिक वार्तालाप द्वारा पात्र एक-दूसरों के चरित्र को ही स्पष्ट नहीं कर देते अपितु अपनी कथन-शैली, भाव-भंगिमा और भाषा द्वारा अपने स्वयं के चरित्र की भी व्याख्या कर देते हैं। लेखक स्वयं अपनी ओर से कुछ नहीं कहता; प्रत्युत अपने चरित्र का विश्लेषण करने या दूसरे पात्रों के प्रति सांकेतिक शब्द कहकर उनकी व्याख्या उपस्थित करने की भी उन पात्रों को पूरी स्वतन्त्रता होती है।

कहानी में घटना-क्रम को भी आगे चलाने के लिए वार्तालाप का प्रयोग कहीं-कहीं किया जाता है, परन्तु ऐसा करना उपयुक्त या सर्वथा कलापूर्ण नहीं कहा जा सकता। पात्रों की विशिष्ट मनोवृत्ति का प्रदर्शन करने के लिए ही कथोपकथन का आश्रय लेना चाहिए। पुनः व्यर्थ के लम्बे कथोपकथन निर्जीव, शुष्क और बोझिल हो जाते हैं। वार्तालाप द्वारा चरित्र-विश्लेषण भी बहुत ही सुन्दर ढंग से हो सकता है।

घटना—कहानी की प्रमुख आधार-घटना के साथ ही पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक होने के लिए सामान्यतः छोटी-छोटी घटनाओं का भी समावेश किया जाता है। ऐसी छोटी-छोटी घटनाएं प्रधानतया प्रमुख आधार-घटना के लिए पूरक का काम देती हैं, किन्तु यह अत्यावश्यक है कि वे न तो अप्रासंगिक हों और न सापेक्षिक दृष्टि से बहुत लम्बी हों। पुनः प्रमुख आधार-घटना के साथ भी इन सारी छोटी-छोटी घटनाओं का पूरा-पूरा सामञ्जस्य होना चाहिए। कथोपकथन और घटनाओं के मिश्रण द्वारा चरित्र-चित्रण करने का ढंग ही उपयुक्त तथा सब तरह से कलात्मक होता है। इस प्रकार घटना-प्रवाह की गति अक्षुण्ण रहती है, और साथ ही पात्रों के चरित्र का क्रमिक विकास भी सुन्दर स्वाभाविक ढंग से आप-ही-आप प्रस्तुत होता जाता है।

ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि पात्रों के चरित्र-चित्रण में कथोपकथन किस प्रकार सहायक होता है। परन्तु उसके सिवाय यह कथानक का भी एक आवश्यक गुण है। यह सत्य है कि कुछ कथाकारों की कृतियों में कथोपकथन हैं ही नहीं तथापि उनकी गणना कहानियों में ही होती है, परन्तु ऐसे कुछ सफल कलात्मक अपवाद उपर्युक्त साधारण कथन की ही पुष्टि करते हैं। कथा की स्वाभाविकता के लिए उसमें कथोपकथन का समावेश किया जाना अत्यावश्यक है। उनके द्वारा ही पात्रों के दृष्टिकोण, आदर्श तथा उद्देश्य से पाठक भली-भाँति परिचित हो सकता है। वार्तालाप को स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करने से पाठक को बड़ी ही सुगमता से सम्पूर्ण परिस्थिति का ज्ञान हो जाता है। वस्तुत: कहानी में दिये जाने वाले कथोपकथन तीन बातों में बहुत सहायक हो सकते हैं—

(१) चरित्र-चित्रण में,

(२) घटनाओं को गतिशील बनाने में, और

(३) भाषा-शैली का प्रस्फुटन करने में।

कथोपकथन कहानी में प्रवाह, सजीवता और औत्सुक्य उत्पन्न करते हैं, किन्तु इन गुणों को उत्पन्न करने के लिए कथोपकथनों का पात्रों और परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल होना आवश्यक है। कथोपकथनों के वैसा न होने से चरित्र-चित्रण अस्पष्ट तथा भ्रामक हो जायगा। पुनः कथोपकथनों में अनाश्यक तथा विषय से असम्बद्ध अंश कदापि नहीं होने चाहिएं। पात्रों के मुख से लम्बे-लम्बे अभिभाषण करवाने से कथा का प्रवाह भंग हो जाता है, कथानक में शिथिलता आ जाती है और पाठक ऊबने-सा लग जाता है। उपन्यासों की अपेक्षा कहानी के कथोपकथनों में कहीं अधिक संयम और नियंत्रण की आवश्यकता है। ये कथोपकथन जितने भी अधिक मनोभावों के अनुकूल होंगे उतने ही वे अधिक कलात्मक और उत्कृष्ट होंगे, तथा उनके द्वारा अन्तर्द्वन्द्व के अतिरिक्त मानसिक उत्कर्ष का भी सुन्दर चित्रण हो सकता है। भावपूर्ण गतिमय कथोपकथन का एक सुन्दर उदाहरण प्रेमचन्दजी की 'स्तीफा' कहानी में यह है—

"घर में जाते ही शारदा ने पूछा—'किसलिए बुलाया था, बड़ी देर हो गई ?'

फतहचन्द ने चारपाई पर लेटते हुए कहा—'नशे की सनक थी, और क्या ? शैतान ने मुझे गालियाँ दीं, जलील किया। बस यही रट लगाये हुए था कि देर क्यों की। निर्दयी ने चपरासी से मेरा कान पकड़ने को कहा।'

शारदा ने गुस्से में आकर कहा—'तुमने एक जूता उतारकर दिया नहीं सुअर को ?'

फतहचन्द—'चपरासी बहुत शरीफ़ है, उसने साफ कह दिया—"हुजूर, मुझसे यह काम न होगा। मैंने भले आदमियों की इज्जत उतारने के लिए नौकरी नहीं की थी।" वह उसी वक्त सलाम करके चला गया।'

शारदा—'यह बहादुरी है। तुमने उस साहब को क्यों नहीं फटकारा।'

फतहचन्द—'फटकारा क्यों नहीं, मैंने भी खूब सुनाईं। वह छड़ी लेकर दौड़ा—मैंने भी जूता सँभाला। उसने मुझे कई छड़ियाँ जमाईं—मैंने भी कई जूते लगाए।'

शारदा ने खुश होकर कहा—'सच? इतना-सा मुँह हो गया होगा उसका।'

फतहचन्द—'चेहरे पर झाड़ू-सी फिरी हुई थी।'

शारदा—'बड़ा अच्छा किया तुमने; और मारना चाहिए था। मैं होती तो बिना जान लिये न छोड़ती'।"

भावात्मक कहानियों में कथोपकथन स्वाभाविक कम और कवितामय अधिक होता है, किन्तु सम्पूर्ण कथा-प्रवाह में किसी भी प्रकार वह अनुपयुक्त नहीं प्रतीत होता। प्रसाद की 'समुद्र-सन्तरण' कहानी से इसका यह उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

"धीवर-बाला आकर खड़ी हो गई। बोली—'मुझे किसने पुकारा ?'

'मैंने।'

'क्या कहकर पुकारा ?'

'सुन्दरी।'

'क्यों मुझमें क्या सौन्दर्य है ? और है भी कुछ, तो क्या तुमसे विशेष ?'

'हाँ, आज तक मैं किसी को सुन्दरी कहकर नहीं पुकार सका था। क्योंकि यह सौन्दर्य-विवेचना मुझमें अब तक नहीं थी।'

'आज अकस्मात् यह सौन्दर्य-विवेक तुम्हारे हृदय में कहाँ से आया ?'

'तुम्हें देखकर मेरी सोई हुई सौन्दर्य-तृष्णा जाग गई।"

अत्यधिक भावुकतामय और कवित्वपूर्ण कथोपकथन कहानियों के स्वाभाविक प्रवाह में बाधक ही बन जाते हैं।

देश, काल तथा वातावरण

उपन्यास में तो इन तीनों बातों का समावेश होता ही है, और कहानी में ये आए बिना रह नहीं सकतीं। घटना तथा पात्रों से सम्बन्धित स्थान, काल तथा उपयुक्त वातावरण की पृष्ठ-भूमि कथाकार को ही प्रस्तुत करनी पड़ती है, किन्तु उपन्यास की अपेक्षा वह बहुत ही संक्षेप में और वस्तु-विन्यास से सम्बद्ध अत्यावश्यक क्षेत्र तक ही सीमित रहती है। देश, काल तथा वातावरण का यह चित्रण बहुत स्वाभाविक, आकर्षक और यथासम्भव पात्रों की परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिए। ऐतिहासिक ही नहीं किसी स्थान-विशेष को लेकर लिखी गई कहानियों में उस काल या स्थान को लेकर किये गए वर्णनों या घटना-क्रम को प्रस्तुत करते हुए उस काल या स्थान-विशेष की विशेषताओं की पूरी जानकारी आवश्यक है एवं उनका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए वरना कई एक बहुत ही भद्दी भूलें हो जानी असंभव नहीं। प्रेमचन्द जी की 'विश्वास' कहानी को ही ले लीजिए (मानसरोवर, भाग

३, पृष्ठ १-२२)। उसमें प्रारम्भ में ही बम्बई के बाज़ार और दूकानदारों का जो वर्णन दिया है वह बनारस के बाजार के लिए ही उपयुक्त हो सकता है। पुनः उत्तर-प्रदेश के नगरों में दीख पड़ने वाले 'किराये के ताँगे' का उल्लेख उन्होंने बम्बई नगर-सम्बन्धी इस कहानी में भी कर दिया। बम्बई नगर में ताँगे पाए ही नहीं जाते उनके स्थान पर वहाँ एक घोड़े की 'विक्टोरिया गाड़ी' किराये पर चलती है।

वर्णन-शैली

इसका सम्बन्ध कहानी के सारे ही तत्त्वों से है। शब्द तथा भाव दोनों के वर्णन में वह लेखक के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित कर देती है। कहानी की वर्णन-शैली अत्यन्त आकर्षक, प्रवाहमयी और धारावाहिक होनी चाहिए। अपनी वर्णन-शैली द्वारा गूढ़-से-गूढ़ भावनाओं की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अनुभूतियों की समुचित अभिव्यक्ति में ही लेखक की सफलता है। कहानी को प्रभावशाली बनाने के लिए भाषा की शक्ति का भी उपयोग किया जाता है। लक्षणा, व्यंजना आदि शब्द-शक्तियों तथा अलंकार, मुहाविरे और लोकोक्तियों का उपयोग वर्णन-शैली के संवर्धन के लिए सहायक उपकरण के रूप में किया जा सकता है। वर्णन-शैली में समुचित शक्ति तथा प्रभाव उत्पन्न करने के लिए वर्णन-शक्ति (पावर ऑफ़ डिस्क्रिप्शन) के साथ विवरण-शक्ति (पावर ऑफ़ नेरेशन) भी आवश्यक होती हैं। संगति और प्रभाव की एकता (यूनिटी ऑफ़ इम्प्रेशन) भी कहानी के लिए आवश्यक है। इन्हीं सारे तत्त्वों के सम्मिश्रण से कहानी में कौतूहल और औत्सुक्य की भावना को जाग्रत रखा जा सकता है। भाषा की यह सजीवता और शक्ति कथा में गतिशीलता की भावना भी उत्पन्न कर देती है। वर्णन-शैली की उत्कृष्टता के लिए भाषा का सजीव और मुहाविरेदार होना भी आवश्यक है। साथ ही भाषा में समुचित अलंकारों और मुहाविरों के प्रयोग से उसकी साहित्यिकता तथा प्रभाव बढ़ता है, परन्तु उनका अत्यधिक प्रयोग हानिकारक ही होता है।

देश, काल, वातावरण तथा परिस्थितियों के निरन्तर तथा स्थान-स्थान पर

बदलते रहने पर भी विचार, भाव और अनुभूतियों में सदैव एवं सर्वत्र समानता बनी रहती है। उनकी अभिव्यक्ति के साधनों—भाषा, वस्तु-विन्यास तथा वर्णन-शैली—में अवश्य अन्तर होता है। इनकी नूतनता ही लेखक की मौलिकता और नवीनता होती है। प्रयत्न करने पर भी लेखक अपने युग के आदर्शों और भावनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वस्तुतः लेखक की रचनाओं में उस युग के आदर्शों की ही अभिव्यक्ति होती है। इस अभिव्यक्ति का ढंग अवश्य ही प्रत्येक लेखक का अपना होता है।

कहानियों के विषय के अनुरूप ही लेखक को अपनी लेखन-शैली में उपयुक्त परिवर्तन करने पड़ते हैं। व्यंग-प्रधान कहानियों की शैली व्यंगपूर्ण होती है, और भावात्मक तथा वर्णनात्मक कथाओं में भावुकता एवं विवरण की प्रधानता होना स्वाभाविक ही है। प्रत्येक लेखक का अपना ही विशिष्ट व्यक्तित्व होता है और उसी के अनुसार उसकी लेखन-शैली का विकास होता है। अपने आदर्शों के अनुरूप ही वह अपनी भाषा और वर्णन-शैली का भी स्वरूप-निर्माण करता है। प्रसाद और प्रेमचन्द जी की अपनी-अपनी विभिन्न शैली उनकी व्यक्तिगत रुचियों की ही परिचायिका है।

इन उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त भावावेग (इमोशन), अनुभूति अथवा संवेदना (सेण्टिमेण्ट), अलौकिकता (फेण्टसी) और हास्य (ह्यूमर) को कहानी के लिए आवश्यक तत्त्वों के रूप में स्वीकार किया जाता है। परन्तु इनका प्रयोग कहानी के विभिन्न भागों में कहाँ, किस रूप में तथा किस मात्रा में किया जाना चाहिए इसका निर्णय प्रत्येक कहानीकार को अपनी रुचि, कला, कौशल के साथ ही कथा-वस्तु को ध्यान में रखकर करना पड़ता है। वस्तुतः संवेदना, भावुकता आदि भाव-तत्त्व तो साहित्य में कलात्मक सौन्दर्य के लिए अत्यावश्यक हैं। ये तत्त्व अपने वास्तविक रूप में सम्पूर्ण साहित्य के स्थायी आधार हैं एवं इनसे विहीन कथा को साहित्य कहना सम्भव नहीं।

कहानी का ध्येय

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि कहानी का प्रमुख ध्येय निश्चित रूप

से मनोरंजन है; परन्तु इस मनोरंजन के पीछे भी एक और ध्येय अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है जो जीवन की किसी मार्मिक अभिव्यक्ति में ही निहित है। जहाँ उपन्यासकार या महाकाव्य का स्रष्टा कवि सम्पूर्ण मानव-जीवन की विवेचना करता है वहाँ कहानीकार को मानव-मन के उन कुछ तथ्यों या गहरी अनुभूतियों को ही व्यक्त करके संतोष कर लेना पड़ता है जो कि उसके जीवन के अन्तरतम प्रदेश से सम्बन्धित रहती हैं। कहानीकार का चित्रपट अपेक्षाकृत छोटा और क्षेत्र सीमित ही रहता है जिससे उसे ऊपरी बातों की उपेक्षा करके विषय-विशेष पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। वस्तुतः कहानीकार मानव-जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर प्रकाश डालता है। किन्तु आधुनिक कहानियों में यह उद्देश्य व्यक्त न होकर व्यंजित ही होता है। हितोपदेश या उसी ढंग पर लिखी गई प्राचीन कहानियों में कथा कहने के साथ-साथ उपदेश की मात्रा भी विद्यमान रहती थी। यह विशेषता केवल भारतीय साहित्य में ही पाई जाती हो, यह बात नहीं है, यूरोप में भी ईसप की कहानियाँ और ईरान में शेखसादी की गुलिस्ता-बोस्ताँ इसी विशेषता के उदाहरण हैं। परन्तु आधुनिक कहानियाँ एक विशिष्ट उद्देश्य की प्रतिपादिका होती हुई भी उपदेशात्मक नहीं होतीं, कम-से-कम उन्हें वैसा बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता है।

आजकल की कहानियों में चरित्र-चित्रण की ही प्रधानता होती है। एवं उनमें किसी भी उद्देश्य विशेष की अभिव्यक्ति हो यह निश्चितरूपेण नहीं कहा जा सकता। उनमें चरित्र-चित्रण के द्वारा या तो मानसिक विश्लेषण करके लेखक मानव-हृदय की अनुभूतियों अथवा वहाँ चल रहे अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करता है या लेखक अपनी कहानी के पात्रों के चरित्र में अपने निजी दृष्टिकोण को प्रकट करके सुस्पष्ट करता है। प्रगतिवादी लेखकों की कहानियाँ इसी दूसरे प्रकार की रचनाएं हैं। वे समाज के वर्तमान संगठन में आमूल चूल परिवर्तन करना चाहते हैं, एवं श्रमजीवी वर्ग (प्रोलेतेरियत) के सुख-दुःख, आशा-निराशा और उनकी जीवन-सम्बन्धी अनुभूतियों को अपनी रचनाओं का विषय बनाकर क्रान्तिकारी भावनाओं के

प्रचार द्वारा उनमें जागृति उत्पन्न करके अत्यावश्यक परिवर्तनों के लिए उन्हें प्रेरित करना ही उनका मुख्य उद्देश्य होता है। कुछ कहानीकार वर्तमान सामाजिक समस्याओं की विषमता को चित्रित करके उनके प्रति अपने सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनी कहानियों में उपस्थित करते हैं। मनोविश्लेषक कथाकार मानव-मन की गहराइयों में पैठकर उसकी रहस्यमयी प्रवृत्तियों की व्याख्या को ही अपनी कहानियों का उद्देश्य बनाता है। कला के लिए कला को अपना ध्येय बनाकर चलने वाले कहानी-लेखक अपनी रचना को कलात्मक, भावपूर्ण एवं रोचक बनाने पर सर्वथा किसी उद्देश्य से विहीन नहीं रह सकता। किसी प्रचारात्मक या उपदेशात्मक ध्येय से दूर रहकर विशुद्ध चरित्र-चित्रण और मनोरंजन के उद्देश्य की वह भी उपेक्षा नहीं कर सकता। अन्ततोगत्वा कहानी का प्रमुख ध्येय मनोरंजन ही स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु साथ ही चरित्र-चित्रण या वस्तु-विन्यास द्वारा मानव-जीवन की व्याख्या भी उसमें विद्यमान होनी चाहिए।

कहानी के स्वरूप तथा लिखने के प्रकार

कहानी के अब तक अनेकों स्वरूप देखने को मिले हैं और उनसे भी अलग बहुत-से प्रकारों की कल्पना की जा सकती है, किन्तु विषय की दृष्टि से सारी कहानियों को मुख्यतः चार विभागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) घटना-प्रधान, (२) चरित्र-प्रधान, (३) वर्णन-प्रधान, तथा (४) भाव-प्रधान।

घटना-प्रधान कहानियाँ प्रत्येक काल और देश में बहुतायत से निरन्तर प्रचलित रही हैं। इस प्रकार की कहानियों में चरित्र-चित्रण पर मुख्यतः ध्यान नहीं दिया जाता, किन्तु घटनाओं का ही विवरण अधिक रहता है। कौतूहल और औत्सुक्य की भावना को जाग्रत रखना ही इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य होता है। बहुत-सी ऐतिहासिक कहानियाँ और सारी जासूसी कहानियाँ घटना-प्रधान होती हैं। ऐसी कहानियों की श्रेष्ठता मुख्यतः इसी बात पर निर्भर रहती है कि उनमें बाह्य घटनाओं की अपेक्षा आन्तरिक घटनाओं को कितना अधिक महत्त्व दिया गया है।

चरित्र-प्रधान कहानियाँ प्रधानतया इसी शताब्दी की देन हैं। कला की दृष्टि से चरित्र-प्रधान कहानियाँ घटना-प्रधान कहानियों से श्रेष्ठ समझी जाती हैं। मानव-जीवन के विभिन्न स्वरूपों में से किसी एक स्वरूप-विशेष का ही उनमें चित्रण होता है। मानव-चरित्र की व्याख्या करना उनका मुख्य उद्देश्य होता है, किन्तु उनकी विशेषता उनमें किये गए चरित्र-चित्रण में पाई जाने वाली स्वाभाविकता और सजीवता पर ही प्रधानतया निर्भर रहती है।

वर्णन-प्रधान कहानियों में वर्णन की ही प्रधानता होती है। देश, काल, वातावरण, परिस्थितियों, पात्रों आदि के विस्तृत विवरण द्वारा ही इन कहानियों का प्रारम्भ होता है और आगे भी ऐसे ही विवरणों का प्राधान्य रहता है। चरित्र-चित्रण, घटनाओं के स्वाभाविक विकास और कथानक के प्रवाह की ओर लेखक विशेष ध्यान नहीं देता एवं कथा-तत्त्व की दृष्टि से इन कहानियों को महत्त्व नहीं दिया जा सकता और न वे श्रेष्ठ ही मानी जा सकतीं।

भाव-प्रधान कहानियों में मनोभावों के विश्लेषण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। मानसिक उतार-चढ़ाव, हृदय में चलने वाले अन्तर्द्वन्द्व और विभिन्न प्रवृत्तियों के संघर्ष के चित्रण के साथ ही उनकी विशद व्याख्या भी इन कहानियों में की जाती है। प्रस्तुत भावों की गहनता एवं विषय की जटिलता के कारण ऐसी कहानियों में रोचकता कम होती है और वे सर्वसाधारण का मनोरंजन नहीं कर पातीं। गम्भीर विचार वाले उच्चकोटि के पाठकों के लिए इनका विशेष महत्त्व होता है, और लेखक की चतुराई एवं विश्लेषण-कुशलता पर ही ऐसी कहानियों का महत्त्व निर्भर रहता है।

कहानी लिखने के भी अनेकों प्रकार देखने में आते हैं, परन्तु उनका वर्गीकरण इन मुख्य रूपों में किया जा सकता है—

(१) **ऐतिहासिक या वर्णनात्मक-प्रणाली**—लेखक एक द्रष्टा या विवरण-कर्ता (रिपोर्टर) की भाँति सम्पूर्ण कहानी को कहता है। जैसे—

"यह घटना आज से २५०० वर्ष पहले की है।....आदि।" यह कहना ठीक नहीं होगा कि ऐसी कहानियों में कथोपकथन बहुत ही कम होते हैं और उनका प्रयोग किसी विशिष्ट बात को वक्ता के शब्दों में ही दुहराने के लिए किया जाता है।

(२) **कथोपकथन-प्रणाली**—इस प्रणाली के अनुसार लिखी जाने वाली कहानियों में कथोपकथन की सरसता तथा उसके द्वारा घटनाओं की गतिशीलता पर विशेषरूपेण ध्यान देना पड़ता है। पात्रों के चारित्रिक विकास और घटनाओं के क्रमिक प्रवाह के लिए यह प्रणाली सहायक हो सकती है, किन्तु एक-मात्र इसी प्रणाली का सहारा लेकर सारी कहानी को सफलतापूर्वक लिख सकना सरल नहीं।

प्रायः जितनी भी कहानियाँ लिखी जाती हैं उनमें इन उपर्युक्त दोनों प्रणालियों का विभिन्न अनुपात में सम्मिश्रण पाया जाता है। कुछ साहित्य-समीक्षक इन दोनों प्रणालियों का अलग-अलग अस्तित्व न मानकर दोनों की सम्मिश्रित प्रणाली को ही एक प्रणाली विशेष का स्थान देते हैं।

(३) **आत्म-कथन-प्रणाली**—इसमें लेखक एक या अधिक पात्रों की आप-बीती के रूप में सारी कहानी को लिख देता है। ऐसी कहानियों की यथार्थता बहुत मार्मिक होती है। डायरी के रूप में लिखी गई कथाएं भी इसी आत्म-कथन-प्रणाली का ही एक उपविभाग-मात्र हैं। आत्म-कथन-प्रणाली की कहानियाँ लिखना पर्याप्त कठिन है, क्योंकि लेखक इसमें बहुज्ञता का परिचय नहीं दे सकता। किन्तु इस रूप में लिखी गई कहानियाँ प्रायः अत्यधिक सरल और स्वाभाविक होती हैं। इस प्रणाली की कहानियाँ लिखने का प्रचलन आजकल हिन्दी में बढ़ रहा है।

(४) **पत्रात्मक-प्रणाली** के अनुसार लिखी गई कहानियों में सम्पूर्ण कथा का विकास पत्रों के उत्तर-प्रत्युत्तर द्वारा ही होता है। ऐसी कहानियों की सफलता के लिए पत्र में अनर्गल या अनावश्यक अंशों का समावेश न करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इस प्रणाली में पात्रों

के चारित्रिक विकास की गुञ्जाइश कम ही होती है। इसी प्रकार पत्रों में घटनाओं के रूप में भी बहुत शिथिलता आ जाती है।

कहानी लिखने की इन मुख्य प्रणालियों के अतिरिक्त अन्योक्ति, समाचार-पत्र या स्वप्न द्वारा भी कथा कही जा सकती है। ऐसी कई अन्य नूतन प्रणालियाँ भी प्रयुक्त की जा सकती हैं, परन्तु अन्ततः वे उपर्युक्त विभिन्न प्रणालियों से बहुत अधिक भिन्न नहीं होंगी।

कहानी का प्रारम्भ और अन्त

किसी भी विषय को लेकर किसी भी प्रणाली में लिखी गई कहानी क्यों न हो, उसकी सफलता का बहुत-कुछ रहस्य प्रधानतया उसके प्रारम्भ और अन्त करने के ढंग पर निर्भर रहता है।

कहानी का प्रारम्भ करने के अनेक ढंग हैं। किसी भी दृश्य, व्यक्ति या वस्तु के वर्णन से कथा का आरम्भ करना कठिन नहीं। प्रायः कहानियाँ इसी प्रकार प्रारम्भ की जाती हैं। दूसरा ढंग यह है कि किसी वार्तालाप को लेकर कथा का प्रारम्भ किया जाय। यों कहानी की पहली पंक्ति से ही कहानी अपने-आप आगे बढ़ने लगती है। तीसरे ढंग से आरम्भ की गई कहानियों में किसी घटना को लेकर ही उसका प्रारम्भ किया जाता है और यों प्रारम्भ से ही औत्सुक्य को जाग्रत कर दिया जाता है। पाश्चात्य देशों में घटनात्मक कहानियों का प्रारम्भ प्रायः इसी ढंग से किया जाता है जिससे उस कहानी की मुख्य घटना का आभास भी प्रारम्भ में दे दिया जाय।

साधारण वार्तालाप को लेकर ही बहुत कलात्मक एवं नाटकीय ढंग से प्रारम्भ की गई कहानी का उदाहरण प्रसाद जी की 'आकाश-दीप' कहानी में मिलता है, जो इस प्रकार है—

" 'बन्दी !'

'क्या है ? सोने दो।'

'मुक्त होना चाहते हो ?'

'अभी नहीं, निद्रा खुलने पर। चुप रहो।'

'फिर अवसर न मिलेगा।'

'बड़ा शीत है कहीं से कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता ?' "

सारांश यह है कि कहानी की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इतनी आकर्षक होनी चाहिए कि वे पाठक को एकदम आकृष्ट कर लें और पाठक का कौतूहल प्रारम्भ से बढ़ने लगे ।

कहानी का अन्त यद्यपि उसके प्रारम्भ से कहीं सरल होता है परन्तु वह प्रारम्भ से बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। कहानी के अन्त का प्रभाव पाठक पर स्थायी रूप से पड़ता है, अतएव किसी कहानी-सम्बन्धी उसकी सम्मति विशेषतया उसके अन्त पर ही निर्भर रहती है । यदि कहानी का अन्त अस्वाभाविक होगा तो न कोई उस कहानी से प्रभावित होगा और न वह कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट ही कही जायगी । अतः कहानी का अन्त स्वाभाविक और चमत्कारपूर्ण होते हुए भी पाठक पर स्थायी प्रभाव छोड़ने वाला होना चाहिए । किसी कहानी को पढ़ लेने के बाद उससे प्रकट होने वाली विशिष्ट वेदनामय अनुभूति से पर्याप्त समय तक पाठक के हृदय को आप्लावित करते रहने के लिए यह अत्यावश्यक है कि कहानी का अन्त ठीक समय पर उचित ढंग से कुशलतापूर्वक किया जाय। सम्पूर्ण कथा-प्रवाह के तारतम्य को बनाए रखने के लिए लेखक की कुशलता का परिचय कहानी के अन्त में मिलता है । भावात्मक कहानियों का अन्त करना विशेषतया अत्यन्त कठिन होता है । उनमें चरित्र-चित्रण का ब्यौरेवार विवरण नहीं मिलता है जिससे वे सर्वसाधारण के लिए पहेलियों के रूप में बन जाती हैं ।

कहानी और उपन्यास

कहानी के मूल तत्त्वों का संक्षेप में कुछ विवेचन ऊपर किया गया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी और उपन्यास में पाए जाने वाले कई तत्त्व समान और मूलतः एक ही हैं । किन्तु इस मूलगत एकता और ऊपरी समानता के होते हुए भी दोनों के उद्देश्यों में भेद अवश्य है

और वे कई बातों में स्पष्टतया अलग-अलग हैं, जिनका संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जाता है :

(१) उपन्यास और कहानी में सबसे बड़ा अन्तर आकार का है। उपन्यास में पात्रों का बाहुल्य एवं विस्तार होता है, उसमें घटनाओं, परिस्थितियों, देश, काल और वातावरण का अत्यन्त विशद विवेचन किया जाता है, किन्तु कहानी समस्त जीवन के किसी एक अंग या पहलू विशेष या विशिष्ट बिन्दु को ही अपने सम्मुख रखती है। अंग्रेजी साहित्यिकों का यह कथन कि कहानी जीवन के किसी एक पहलू की झाँकी-मात्र है सर्वथा उपयुक्त है। किन्तु यह झाँकी अपने-आपमें सर्वथा पूर्ण होती है।

(२) कहानी में उपन्यास की-सी अनेकरूपता नहीं होती। उसमें न तो प्रासंगिक कथाएं ही होती हैं और न वातावरण तथा देश-काल की परिस्थितियों का विस्तार ही मिलता है। जीवन के जो विभिन्न चित्र तथा उनका जो विस्तार उपन्यासों में मिलता है वह अनेक आख्यायिकाओं में भी नहीं समा सकता। कहानी का क्षेत्र सीमित तथा छोटा होता है। कहानी में उपन्यास की-सी जटिलता नहीं होती, वह अपेक्षाकृत बहुत ही सरल होती है।

(३) कहानी-लेखक जहाँ अपनी कहानियों में कथानक, चरित्र-चित्रण तथा शैली आदि विभिन्न तत्त्वों में से किसी एक को ही मुख्यता प्रदान कर सकता है, वह सबको ही एक साथ नहीं अपना सकता, वहाँ उपन्यासकार अपनी रचना में सबका ही समावेश कर सकता है।

(४) उपन्यास के पात्र कहानी के पात्रों की अपेक्षा कहीं अधिक सजीव होते हैं। उपन्यासकार को उनके चरित्र-विकास का पर्याप्त अवसर मिलता है, जो कहानीकार को कदापि उपलब्ध नहीं हो सकता। किसी घटना-विशेष या एक विशिष्ट पहलू को लेकर किसी कहानी में किये गए चरित्र चित्रण से किसी पात्र का व्यक्तित्व इतना स्पष्ट और सम्पूर्ण नहीं हो पाता कि वह पाठक के हृदय में स्थायी प्रभाव डाल सके।

(५) कहानी में कथन-शैली का विशेष महत्त्व रहता है और उसमें उप-

न्यास की अपेक्षा काव्यत्व की मात्रा अधिक रह सकती है ।

यों कहानी अपनी प्रभावोत्पादकता, संक्षिप्तता, एकध्येयता तथा अनुभव की तीव्रता के कारण उपन्यास से सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता रखती है ।

भारत का प्राचीन कहानी-साहित्य

भारत में कहानी-साहित्य की परम्परा बहुत ही पुरानी है और अनुमानतः वह वैदिक साहित्य से ही प्रारम्भ होती है, जिसमें कहानी के प्रारम्भिक रूप का बीज उपलब्ध होता है । तदनन्तर उपनिषदों, पुराणों तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में कथा-साहित्य का उत्तरोत्तर विकास होता गया । उपनिषदों में दार्शनिक वाद-विवाद के समय आख्यानों का आश्रय लिया गया है । पुराणों में उर्वशी, मय, पुरुरवा, नल-दमयन्ती आदि के आख्यान मिलते हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों में दृष्टान्तों और उदाहरणों के अतिरिक्त प्राचीन राजाओं की कथाएं भी उपलब्ध होती हैं !

बौद्ध-काल में लिखी गई जातक-कथाएं अपनी रोचकता और शालीनता के लिए सुविख्यात हैं । विचार और आदर्शों की दृष्टि से इनमें बहुत-सी कथाएं आज भी विश्व-साहित्य में बेजोड़ हैं । इन कहानियों का कई विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है । अनुमान यह है कि ईसप की कहानियाँ (ईसप्स फेबल्स) और सिन्दबाद नाविक (सिन्दबाद दी सेलर) की कथाएं इन्हीं भारतीय कथाओं से प्रेरित भावनाओं पर आधारित हैं ।

संस्कृत कथा-साहित्य में 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' की कहानियों का अपना विशिष्ट स्थान है । इनमें पशु-पक्षियों को भी पात्र के रूप में ग्रहण करके उनके द्वारा अनेक उपदेशप्रद व्यावहारिक नीति से युक्त कहानियाँ कही गई हैं । इन ग्रन्थों का भी कई विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है ।

पैशाची में लिखी गई गुणाढ्य की 'बुड्ढ कहा' (बृहत्कथा) भारतीय कथा-साहित्य का अमूल्य रत्न है । अपने मूल स्वरूप में यद्यपि यह ग्रन्थ अब तक अप्राप्य है, किन्तु इसकी कथाएं भारतीय साहित्य में परम्परागत चली आ रही हैं । सोमदेव द्वारा लिखित 'कथा सरित्सागर' कोई ईसा की दसवीं शताब्दी में लिखा गया था ।

यों प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य बहुत समृद्ध रहा है। जन-साधारण में प्रचलित बहुत-सी लोक-कथाओं, रोमांचक कहानियों (रोमेण्टिक टेल्स) और अलौकिक वार्ताओं में अन्ततः आज भी, चाहे वह बीज रूप में ही क्यों न हो, उसी प्राचीन भारतीय साहित्य की वही पुरातन परम्परा बराबर चली आ रही है।

किन्तु रचना की दृष्टि से प्राचीन भारतीय कहानियों और आधुनिक हिन्दी-कहानियों में बहुत अधिक अन्तर है। प्राचीन कहानियों के आलम्बन लोकनायक होते हुए भी उनमें व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव ही रहता था। पात्रों का विस्तृत परिचय भी उनमें नहीं पाया जाता था। साहित्यिक कथाओं की शैली समास, अनुप्रास, रूपक आदि से बोझिल होती थी तथा अनावश्यक तर्क-वितर्क को अधिक महत्त्व दिया जाता था। 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' की कहानियों की भाषा अवश्य पर्याप्त सरल है।

आधुनिक कहानी में सरलता अधिक होती है और उसमें भावों के विश्लेषण, मानसिक संघर्ष और चरित्र-चित्रण पर अधिक ध्यान दिया जाता है। उधर प्राचीन कहानी में चमत्कार, विवरण और अलंकार-प्रियता की प्रवृत्ति अधिक होती थी। कौतूहल तथा औत्सुक्य को बनाए रखने के लिए मानवेतर उपकरणों का आश्रय ग्रहण किया जाता था, जिसका कि आधुनिक कहानी में सर्वथा अभाव ही होता है। आधुनिक कहानियों में बौद्धिकता की प्रधानता होती है, और उनमें राजा-रानियों की कथा न होकर जन-साधारण के जीवन का ही विवरण रहता है। पुनः पुराने आख्यानों में तो अनेक उपकथाएं भी चलती रहती हैं, जैसा आधुनिक कहानियों में नहीं होता। पुराने ग्रन्थों में दिये गए दृष्टान्तों का स्वरूप अवश्य आधुनिक कहानी के अधिक निकट है। अतएव यह स्पष्ट है कि हिन्दी-कहानी प्राचीन भारतीय परम्परा के अन्तर्गत होती हुई भी आधुनिक पाश्चात्य कहानी के आधार पर ही आधारित है।

हिन्दी-कहानी का विकास

हिन्दी में प्रारम्भिक कहानियाँ अनुवाद के रूप में वैताल-पच्चीसी, सिंहा-

सन-बत्तीसी, शुक बहोतरी आदि नाम से आईं। इंशा अल्ला-कृत 'रानी केतकी की कहानी' और राजा शिवप्रसाद द्वारा लिखित 'राजा भोज का सपना' आधुनिक हिन्दी-कहानी के प्रथम स्वरूप हैं। परन्तु वास्तव में हिन्दी-कहानी आधुनिक युग की देन है और इसका प्रारम्भिक विकास अंग्रेजी ढंग की छोटी कहानी के अनुकरण पर ही हुआ है। आधुनिक हिन्दी का प्रारम्भ ईसा की २०वीं सदी के आरम्भ से ही गिना जाना चाहिए। सन् १९०० ई० की जनवरी से सुप्रसिद्ध हिन्दी पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ और तब से ही आधुनिक हिन्दी-कहानी का वास्तविक प्रारंभ हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी-लिखित हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी 'इन्दुमती' जून १९०० ई० में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। शेक्सपियर के अंग्रेजी नाटक 'टेम्पेस्ट' और उसी प्रकार की एक राजपूत कहानी के सम्मिश्रण से इस कहानी की रचना की गई थी। पार्वतीनन्दन और बंगमहिला ने कितनी ही बंगला कहानियों का हिन्दी में रूपान्तर करके हिन्दी-कहानी के विकास में योग दिया। बंगमहिला की 'दुलाई वाली' कहानी में स्थानीय वातावरण के साथ यथार्थवादी चित्रण की आशापूर्ण झलक प्रथम बार हिन्दी में देखने को मिली (सरस्वती, मई १९०५)। प्रसादजी ने 'इन्दु' पत्र में 'ग्राम' शीर्षक अपनी सर्वप्रथम कहानी प्रकाशित करवाकर सन् १९११ ई० में इस क्षेत्र में प्रवेश किया। प्रतिदिन के जीवन से ही नहीं लेकिन लेखक की कल्पना से इस प्रकार प्रसूत होने वाली हिन्दी-कहानियों का यह प्रारम्भ उनके विकास में एक महत्त्वपूर्ण उत्थान का आरंभ था। इसी समय विश्वम्भर-नाथ जिज्जा, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, ज्वालादत्त शर्मा, चतुरसेन शास्त्री, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि ने भी सुन्दर कहानियाँ लिखनी प्रारम्भ कीं। इन लेखकों की कई प्रारम्भिक कहा-नियाँ भी बहुत ही सुन्दर कृतियाँ है। परन्तु हिन्दी-कहानी का प्रथम विकास प्रेमचन्दजी की प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' में मिलता है, जो जून १९१६ की 'सरस्वती' में पहली बार प्रकाशित हुई थी।

प्रेमचन्दजी का हिन्दी-साहित्य-संसार में आना हिन्दी-कहानी-साहित्य

के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। बरसों से उर्दू में लिखकर वे अपनी शैली को सँवार चुके थे और अपनी कहानी-लेखन-कला को परिष्कृत कर चुके थे। इस प्रकार तब वे कोई नौसिखिये कहानी-लेखक नहीं थे, परन्तु बहुत-कुछ सिद्धहस्त कलाकार थे। अतएव अब कहानी-लेखन-कला का आदर्श भी ऊँचा हो गया और प्रेमचन्दजी का प्रभाव अन्य कहानी-लेखकों पर भी पड़ने लगा। इसी समय कहानी-क्षेत्र में प्रवेश करने वालों में राय कृष्णदास, पं० गोविन्दवल्लभ पन्त, सुदर्शन, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' और शिवपूजनसहाय के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस समय हास्य-रस की कहानियाँ लिखने वालों में गंगाप्रसाद (जी० पी०) श्रीवास्तव का ही नाम लिया जा सकता है। गोपालराम गहमरी ने जासूसी कहानियाँ लिखीं। उग्रजी ने भी कई सुन्दर कहानियाँ लिखी थीं।

यह युग हिन्दी के कहानी-क्षेत्र में अभूतपूर्व उत्थान का था। अनेकों नए-नए लेखकों ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया और ये नवयुवक कहानीकार अपनी लेखनी द्वारा कहानी-लेखन-कला को अधिकाधिक सँवारने लगे, जिनमें से सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, रघुपति सहाय, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मोहनलाल महतो 'वियोगी,' वाचस्पति पाठक, जनर्दन झा 'द्विज', वृन्दावनलाल वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा 'अज्ञेय' की कृतियाँ सचमुच ही महत्त्वपूर्ण हैं।

ईसा की बीसवीं सदी के दूसरे चतुर्थांश के प्रारम्भ से ही हिन्दी-कहानी-क्षेत्र में एक सर्वथा अनपेक्षित नूतन प्रभाव पड़ने लगा। रवीन्द्र, शरत्चन्द्र आदि बंगला-लेखकों का प्रभाव अब हिन्दी-लेखकों पर से घटने लगा था और अब उनके स्थान पर हिन्दी के कहानी-लेखक रूसी लेखकों की कहानियाँ अधिक आदर और श्रद्धा से पढ़ने लगे। महात्मा गाँधी तॉल्स्तॉय को आदर की दृष्टि से देखते थे, किन्तु जब पं० जवाहरलाल नेहरू ने तुर्गनेव, दास्तोयेव्सकी, और गोर्की की चर्चा प्रारम्भ की तो हिन्दी के कहानी-लेखक भी इन रूसी लेखकों की कहानियों की ओर आकृष्ट हुए। इस नए प्रभाव का प्रथम महत्त्वपूर्ण परिणाम कहानी-लेखन-कला की उन्नति हुआ; पुनः अब कहानी-

लेखक जन-साधारण के जीवन को चित्रित करने के लिए अधिकाधिक प्रयत्न-शील होने लगे। कई वर्षों के बाद यही प्रभाव बढ़ते-बढ़ते अधिक व्यापक बन गया और तब उसने राजनीति के साथ साहित्य में भी प्रगतिशील परम्परा का स्वरूप ले लिया। आज हिन्दी-कहानी-क्षेत्र में इस परम्परा का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेकानेक लेखक हैं, जिनमें यशपाल, पहाड़ी, रांगेय राघव, अमृतराय आदि लेखकों ने अनेकों सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं।

केवल अर्ध-शताब्दी के इस थोड़े से काल में हिन्दी के कहानी-साहित्य में जो उन्नति हुई है वह सर्वथा आशातीत है। उपरोक्त विभिन्न परम्पराओं के अतिरिक्त भी कई एक प्रतिभाशाली लेखकों ने सुन्दर कहानियाँ लिखकर हिन्दी-साहित्य के उद्यान को सुसज्जित एवं भरपूर बनाया है। श्री श्रीराम शर्मा ने शिकार-सम्बन्धी कहानियाँ लिखकर एक सर्वथा अछूते क्षेत्र को अपनाया है। सर्वश्री ब्रजमोहन वर्मा, अन्नपूर्णानन्द, हरिशंकर शर्मा, कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब' ने व्यंग और हास्य से मिश्रित बहुत ही सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। रामचन्द्र तिवारी ने वैज्ञानिक कहानियाँ लिखकर हिन्दी-साहित्य में एक सर्वथा नया प्रयोग किया है। कई एक महिलाओं ने भी कहानियाँ लिखी हैं; उनमें श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, होमवती देवी, कमला चौधरी, उषा देवी मित्रा, सत्यव्रती मल्लिक और चन्द्रकिरण सौनरेक्सा आदि के नामों का उल्लेख बड़े ही आदर के साथ किया जाना चाहिए।

१ : : श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

उसने कहा था

(१)

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है, और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है, कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगायें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए, इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह-चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं, और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तङ्ग चक्करदार गलियों में, हर-एक लड्ढी वाले के लिए ठहरकर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसा जी !' 'हटो भाईजी !' 'ठहरना भाई !' 'आने दो लाला जी !' 'हटो बाछा !' (=बादशाह) कहते हुए सफ़ेद फेंटों, खच्चरों और बत्तखों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जङ्गल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है, कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं; चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चेतावनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये

नमूने हैं—'हट जा जीणे जोगिये, हट जा करमाँ वालिये, हट जा पुत्ताँ प्यारिये; बच जा लम्बी वालिये।' समष्टि में इनके अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है ?—बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उनके बालों और ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था, और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ हैं ?"

"मगरे में—और तेरे ?"

"माँझे में—यहाँ कहाँ रहती है ?"

"अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।"

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाज़ार में है।"

इतने में दूकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—"तेरी कुड़माई (=मँगनी) हो गई ?"

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्ज़ी वाले के यहाँ, दूध वाले के यहाँ अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना-भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई ?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—"हाँ हो गई।"

"कब ?"

"कल; देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ 'सालू' (=ओढ़नी)।"

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली, रास्ते में एक लड़के को मोरी में धकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उँडेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

(२)

"राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है! दिन-रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाना से दस गुना जाड़ा, मेंह और बरफ़, ऊपर से पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। ग़नीम कहीं दिखता नहीं;—घण्टे-दो घण्टे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज़ धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का ज़लज़ला सुना था, यहाँ दिन में पच्चीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफ़ा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिए, परसों 'रिलीफ़' आ जायगी, और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका (= बकरा मारना) करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी (= फ्रेंच) मेम के बाग में—मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।"

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की दहलीज पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों

के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?" सूबेदार हज़ारासिंह ने मुस्कराकर कहा—"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफ़सर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ़ बढ़ गए तो क्या होगा?"

"सूबेदारजी, सच है" लहनासिंह बोला—"पर करें क्या? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ़ से चम्बे की बावलियों के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय, तो गरमी आ जाय।"

"उदमी, (=उद्यमो) उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाज़े का पहरा बदला दे।"—यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाधा—बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—"अपनी बाड़ी के खरबूज़ों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।"

"हाँ देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा (=जमीनों की नाप) ज़मीन यहाँ माँग लूँगा, और फलों के बूटे (=पेड़) लगाऊँगा।"

"लाड़ी होराँ (=स्त्री) को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलाने वाली फिरङ्गी मेम—"

"चुप रह। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

"देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा, अब बोधसिंह कैसा है?"

"अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात-भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और 'निमोनिया' से मरने वालों को मुरब्बे (=नई नहरों के पास वर्ग-भूमि) नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वज़ीरासिंह ने त्यौरी चढ़ाकर कहा—"क्या मरने-मारने की बात लगाई है? मरें जर्मनी और तुरक! हाँ भाइयो, कैसे—"

> दिल्ली शहर तें पिशौर नुँ जाँदिए,
> कर लेणा लौंगां दा बपार मडिए;
> कर लेणा नाड़े दा सौदा अड़िए—
> ओय लाणा चटाका कदुएनुँ।

कद्दू बणया वे मजेदार गोरिये,
हुण लाणा चटाका कदुए नुँ ॥[१]

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले घर-बारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गायंगे, पर सारी खन्दक इस गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(३)

दो पहर रात गई है। अन्धेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधसिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट (=ओवर कोट) ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधसिंह के दुबले शरीर पर। बोधसिंह कराहा।

"क्यों बोधा, भाई क्या है?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—"कहो कैसे हो?"

पानी पीकर बोधा बोला—"कँपनी (=कँपकँपी) छुट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है; पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए—"

"हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही

अरी दिल्ली शहर से पेशावर को जाने वाली लौंगों का व्यापार कर ले और इजारबन्द का सौदा कर ले। जीभ चटचटाकर कद्दू खाती है। गोरी! कद्दू मजेदार बना है। अब चटचटाकर उसे खाना है।

आई है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।" यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो?"

"और नहीं झूठ?" यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने ज़बरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता-भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आई—"सूबेदार हजारासिंह!"

"कौन लपटन साहब? हुकुम हुजुर"—कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील-भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज़्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—"लो तुम भी पियो।"

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव

छिपाकर बोला—"लाओ, साहब।" हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल देखे, तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैंचियों से कटे हुए बाल कहाँ से आ गए?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेज़िमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायंगे?"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम और आप जगाधरी जिले में शिकार करने गए थे—'हाँ, हाँ'—वही जब आप खोते(=गधे) पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था? 'बेशक पाजी कहीं का'—सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है! क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रजमेंट की मैस में लगायंगे। 'हो, पर मैंने वह विलायत भेज दिया'—ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो-दो फुट के तो होंगे?"

"हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ"—कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निरचय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया ?

"कौन ? वज़ीरासिंह ?"

"हाँ, क्यों लहना ? क्या, क़यामत आ गई ? ज़रा तो आँख लगने दी होती ?"

(४)

"होश में आओ। क़यामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।"

"क्या ?"

"लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं। सौहरा (=सुसरा) साफ़ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ?"

"तो अब ?"

"अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार होरां (=जी) कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आयें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खुड़के। देर मत करो।"

"हुकुम तो यह है कि यहीं—"

"ऐसी-तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की ख़बर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनो में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने...

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आह माई गॉड' (= हाय मेरे राम) कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफ़ाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिज़ाज़ कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के किले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इन्च के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आए? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डेम' के पाँच लफ़्ज़ भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने, मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया, "चालाक तो बड़े हो पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए

चार आँखें चाहिएं। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा (खाट) बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था जर्मनी वाले बड़े पण्डित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते, हिन्दुस्तान में आ जायंगे तो गौ-हत्या बन्द कर देंगे। मण्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपया निकाल लो; सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूढ़ दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो—"

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धमाका सुनकर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया—"क्या है ?"

लहनासिंह ने उसे यह कहकर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गए। लहना ने साफ़ा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधीं। घाव मांस ही में था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका, दूसरे को रोका, पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था—वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े-से मिनटों में वे—

अचानक आवाज़ आई 'वाह गुरुजी की फतह ! वाह गुरुजी का खालसा !!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने

लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे, और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—'अकाल सिक्खाँ दी फौज आई! वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा! सत-श्री अकालपुरुख !!!' और लड़ाई खतम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसे कि वाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचर्य्य' कहलाती है। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन-भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागज़ात पाकर वे उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डॉक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं; जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँची। फील्ड-अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायंगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गए और दूसरी में लाशें रखी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा

घाव है, सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देखकर लहना ने कहा—"तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम!"

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं मैं खड़ा हूँ? वज़ीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया भला आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो, तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—"तुमने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया।—"वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है!"

(५)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएं एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं; समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

❀ ❀ ❀

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्ज़ी वाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, 'तेरी कुड़माई हो गई?' तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा—'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू?' सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

"वज़ीरासिंह, पानी पिला दे।"

× × ×

पच्चीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं० ७७ राइफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया वहाँ रेजिमेण्ट के अफ़सर की चिट्ठी मिली कि फ़ौज लाम पर जाती है, फ़ौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधसिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेढे (= जनाने) में से निकलकर आया। बोला—'लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं, बुलाती हैं। जा मिल आ।' लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से? रेजिमेण्ट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना?' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई—धत्—कल हो गई—देखते नहीं, रेशमी बूटों वाला सालू—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वज़ीरा, पानी पिला'—'उसने कहा था'।

❀ ❀ ❀

स्वप्न चल रहा है, सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों (=स्त्रियों) को एक घघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फ़ौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूबेदारनी रोने लगी। 'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगे-वाले का घोड़ा दही वाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे, और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है, तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी (=अन्दर के घर) में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

'वज़ीरासिंह, पानी पिला'—'उसने कहा था'।

❀ ❀ ❀

लहना का सिर अपनी गोद में रखे वज़ीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—"कौन? कीरतसिंह?"

वज़ीरा ने कुछ समझकर कहा—"हाँ।"

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट (= जाँघ) पर मेरा सिर रख ले।"

वज़ीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ (= आषाढ़) में यह आम खूब फलेगा। चचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।"

वज़ीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

❀ ❀ ❀

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—फ्रांस और बेलजियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स, जमादार लहनासिंह।

२ : : श्री जयशंकर 'प्रसाद'

ममता

(१)

रोहतास-दुर्ग के प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण गम्भीर प्रवाह को देख रही है। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा था। मन में वेदना, मस्तक में आँधी, आँखों में पानी की बरसात लिये, वह सुख के कंटक-शयन में विकल थी। वह रोहतास-दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिए कुछ अभाव होना असम्भव था, परन्तु वह विधवा थी,—हिन्दू विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय है—तब उसकी विडम्बना का कहाँ अन्त था।

चूड़ामणि ने चुपचाप उसके प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में, उसके कल-नाद में अपना जीवन मिलाने में वह बेसुध थी। पिता का आना न जान सकी। चूड़ामणि व्यथित हो उठे। स्नेह-पालिता पुत्री के लिए क्या करें, वह स्थिर न कर सकते थे। लौटकर बाहर चले गए। ऐसा प्रायः होता, पर आज मंत्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी। पैर सीधे न पड़ते थे।

एक पहर बीत जाने पर वे फिर ममता के पास आये। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों में कुछ लिये हुए खड़े थे; कितने ही मनुष्यों के पद-शब्द सुन ममता ने घूमकर देखा। मंत्री ने

सब थालों को रखने का संकेत किया। अनुचर थाल रखकर चले गए।

ममता ने पूछा—"यह क्या है पिताजी ?"

"तेरे लिए बेटी, उपहार है।"—कहकर चूड़ामणि ने उसका आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहली संध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी—

"इतना स्वर्ण ! यह कहाँ से आया ?"

"चुप रहो ममता, यह तुम्हारे लिए है।"

"तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया ? पिताजी ! यह अनर्थ है, अर्थ नहीं है। लौटा दीजिए। पिताजी ! हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे ?"

"इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्त-वंश का अन्त समीप है, बेटी ! किसी भी दिन शेरशाह रोहिताश्व पर अधिकार कर सकता है, उस दिन मंत्रीत्व न रहेगा, तब के लिए बेटी !"

"हे भगवान् ! तब के लिए ! विपद् के लिए ! इतना आयोजन ! परम पिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस ! पिताजी क्या भीख न मिलेगी ? क्या कोई हिन्दू भू-पृष्ठ पर न बचा रह जायगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके। यह असम्भव है। फेर दीजिए पिताजी, मैं काँप रही हूँ—इसकी चमक आँखों को अन्धा बना रही है।"

"मूर्ख है"—कहकर चूड़ामणि चले गए।

× × ×

दूसरे दिन जब डोलियों का ताँता भीतर आ रहा था, ब्राह्मण-मंत्री चूड़ामणि का हृदय धक्-धक् करने लगा। वह अपने को रोक न सका। उसने जाकर रोहिताश्व-दुर्ग के तोरण पर डोलियों का आवरण खुलवानाचाहा। पठानों ने कहा—"यह महिलाओं का अपमान करता है।"

बात बढ़ गई तलवारें खिंची; ब्राह्मण वहीं मारा गया और राजा-रानी और कोष सब छली शेरशाह के हाथ पड़े; निकल गई ममता।

डोली भरे हुए पठान-सैनिक दुर्ग-भर में फैल गए, पर ममता न मिली।

(२)

काशी के उत्तर में धर्मचक्र विहार, मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्ति का खंडहर था। भग्न चूड़ा, तृण-गुल्मों से ढके हुए प्राचीर, ईंटों के ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, ग्रीष्म रजनी चन्द्रिका में अपने को शीतल कर रही थी।

जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु गौतम का उपदेश ग्रहण करने के लिए पहले मिले थे उसी स्तूप के भग्नावशेष की मलिन छाया में एक झोंपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते..."

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मन्द प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बन्द करना चाहा। परन्तु उस व्यक्ति ने कहा—"माता! मुझे आश्रय चाहिए।"

"तुम कौन हो?"—स्त्री ने पूछा।

"मैं मुगल हूँ। चौसा-युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूँ।"

"क्या शेरशाह से"—स्त्री ने अपने ओठ काट लिए।

"हाँ, माता!"

"परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो, वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर प्रतिबिम्ब, तुम्हारे मुख पर भी है। सैनिक! मेरी कुटी में स्थान नहीं, जाओ कहीं दूसरा आश्रय खोज लो।"

"गला सूख रहा है, साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है—इतना थका हुआ हूँ—इतना!" कहते-कहते वह व्यक्ति धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्माण्ड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आई। उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी—'सब विधर्मी दया के पात्र नहीं—मेरे पिता का वध करने वाले

आततायी ।'—घृणा से उसका मन विरक्त हो गया ।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा—"माता ! तो फिर मैं चला जाऊँ ?"

स्त्री विचार कर रही थी—'मैं ब्राह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म—अतिथिदेव की उपासना—का पालन करना चाहिए । परन्तु यहाँ……नहीं-नहीं, सब विधर्मी दया के पात्र नहीं । परन्तु यह दया तो नहीं…कर्तव्य करना है । तब ?'

मुगल अपनी तलवार टेककर उठ खड़ा हुआ । ममता ने कहा—"क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो ?"

"छल ! नहीं, तब नहीं स्त्री ! जाता हूँ, तैमूर का वंशधर स्त्री से छल करेगा ? जाता हूँ । भाग्य का खेल है ।"

ममता ने मन में कहा—'यहाँ कौन दुर्ग है ! यही झोंपड़ी न, जो चाहे ले ले, मुझे तो अपना कर्तव्य करना पड़ेगा ।'—वह बाहर चली और मुगल से बोली—"जाओ भीतर, थके हुए भयभीत पथिक ! तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें आश्रय देती हूँ । मैं ब्राह्मण-कुमारी हूँ, सब अपना धर्म छोड़ दें, तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ ?" मुगल ने चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में वह महिमामय मुखमण्डल देखा, उसने मन-ही-मन नमस्कार किया । ममता पास की टूटी हुई दीवारों में चली गई । भीतर थके पथिक ने झोंपड़ी में विश्राम किया ।

× × ×

प्रभात में खंडहर की सन्धि से ममता ने देखा, सैकड़ों अश्वारोही उस प्रान्त में घूम रहे हैं । वह अपनी मूर्खता पर अपने को कोसने लगी ।

अब उस झोंपड़ी से निकलकर उस पथिक ने कहा—"मिरज़ा ! मैं यहाँ हूँ ।"

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार । ध्वनि से वह प्रान्त गूँज उठा । ममता अधिक भयभीत हुई । पथिक ने कहा—"वह स्त्री कहाँ

है ? उसे खोज निकालो।" ममता छिपने के लिए अधिक सचेष्ट हुई। वह मृग-दाव में चली गई। दिन-भर उसमें से न निकली। संध्या में जब उन लोगों के जाने का उपक्रम हुआ तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते हुए कह रहा है—"मिरज़ा! उस स्त्री को मैं कुछ दे न सका। उसका घर बनवा देना, क्योंकि मैंने विपत्ति में वहाँ विश्राम पाया था। यह स्थान भूलना मत।"—इसके बाद वे चले गए।

× × ×

चौसा के मुगल-पठान-युद्ध को बहुत दिन बीत गए। ममता अब सत्तर वर्ष की वृद्धा है। वह अपनी झोंपड़ी में एक दिन पड़ी थी। शीत-काल का प्रभात था। उसका जीर्ण कंकाल खाँसी से गूँज रहा था। ममता की सेवा के लिए गाँव की दो-तीन स्त्रियाँ उसे घेरकर बैठी थीं; क्योंकि वह आजीवन सबके सुख-दुःख की समभागिनी रही थी।

ममता ने जल पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल पिलाया। सहसा एक अश्वारोही उसी झोंपड़ी के द्वार पर दिखाई पड़ा। वह अपनी धुन में कहने लगा—"मिरज़ा ने जो चित्र बनाकर दिया है, वह तो इसी जगह का होना चाहिए। वह बुढ़िया मर गई होगी, अब किससे पूछूँ कि एक दिन शहंशाह हुमायूँ किस छप्पर के नीचे बैठे थे? यह घटना भी तो सैंतालीस वर्ष से ऊपर की हुई।"

ममता ने अपने विकल कानों से सुना। उसने पास की स्त्री से कहा—"उसे बुलाओ।"

अश्वारोही पास आया। ममता ने रुक-रुककर कहा—"मैं नहीं जानती कि वह शहंशाह था या साधारण मुगल; पर एक दिन इसी झोंपड़ी के नीचे वह रहा। मैंने सुना था कि वह मेरा घर बनवाने की आज्ञा दे चुका था। मैं आजीवन अपनी झोंपड़ी खोदवाने के डर से भयभीत ही थी। भगवान् ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़े जाती हूँ। अब तुम इसका मकान बनाओ या महल, मैं अपने चिर-विश्राम-गृह में

जाती हूँ।"

वह अश्वारोही अवाक् खड़ा था। बुढ़िया के प्राण-पक्षी अनन्त में उड़ गए।

× × ×

वहाँ एक अष्टकोण मन्दिर बना और उस पर शिलालेख लगाया गया—

"सातों देश के नरेश हुमायूँ ने एक दिन वहाँ विश्राम किया था। उनके पुत्र अकबर ने उनकी स्मृति में यह गगनचुम्बी मन्दिर बनाया।"

पर उसमें ममता का कहीं नाम नहीं।

३ : : श्री प्रेमचन्द्र

पूस की रात

(१)

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा—"सहना आया है, लाओ, जो रुपए रखे हैं उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।"

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली—"तीन ही तो रुपए हैं, दे दोगे तो कम्बल कहाँ से आयगा? माघ-पूस की रात हार में कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर रुपए दे देंगे। अभी नहीं है।"

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, बिना कम्बल के हार में रात को वह किसी तरह नहीं सो सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमायगा; गालियाँ देगा। बला से जाड़ों मरेंगे, बला तो सिर से टल जायगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरकम डील लिये हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप गया और खुशामद करके बोला—"ला, दे दे, गला तो छूटे। कम्बल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा।"

मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और आँखें तरेरती हुई बोली—"कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूँ कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्बल? न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी। बाकी चुकाने

के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आए। मैं रुपए न दूँगी,—न दूँगी।"

हल्कू उदास होकर बोला—"तो क्या गाली खाऊँ ?"

मुन्नी ने तड़प कर कहा—"गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है ?"

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गईं। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जन्तु की भाँति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपए निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिए। फिर बोली—"तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है! मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस।"

हल्कू ने रुपए लिये और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से काट-काट कर तीन रुपए कम्बल के लिए जमा किये थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

(२)

पूस की अँधेरी रात! आकाश पर तारा भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ईख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा काँप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुँह डाले सर्दी से कूँ-कूँ कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनों को गर्दन में चिमटाते हुए कहा—"क्यों जबरा, जाड़ा लगता है? कहता तो था, घर में पुआल पर लेटा रह, तो यहाँ क्या लेने आया था? अब खाओ ठण्ड, मैं क्या करूँ। जानते थे,

मैं यहाँ हलुवा-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े-दौड़े आगे-आगे चले आए। अब रोओ नानी के नाम को।"

जबरे ने पड़े-पड़े दुम हिलाई और वह अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान-बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूँ-कूँ से नींद नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठण्डी पीठ सहलाते हुए कहा—"कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठण्डे हो जाओगे। यह रांड पछुआ न जाने कहाँ से बरफ लिये आ रही है। उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह रात तो कटे। आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है। और एक भगवान् ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाय तो गर्मी से घबराकर भागे। मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ, कम्बल। मजाल है जो जाड़े का गुजर हो जाय। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें!"

हल्कू उठा और गड्ढे में से ज़रा-सी आग निकलकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा—"पियेगा चिलम? जाड़ा तो क्या जाता है, हाँ जरा मन बहल जाता है।"

जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हल्कू—"आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।"

जबरा ने अगले पंजे उसके घुटने पर रख दिए और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म साँस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अब की सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कंपन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाये हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया, तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गन्ध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद से चिपटाये हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीने से उसे न मिला था। जबरा शायद यह समझ रहा था कि स्वर्ग यही है, हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगता। वह अपनी दीनता से आहत न था जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया था। नहीं इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे। और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी जो हवा के ठण्ठे झोंकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छतरी के बाहर आकर भूँकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार पुचकारकर बुलाया, पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़कर भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरन्त फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की भाँति उछल रहा था।

(२)

एक घण्टा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और उसने दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया। फिर भी ठण्ड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है? सप्तर्षि आकाश में अभी आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जायंगे तब कहीं सवेरा होगा। अभी पहर-भर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग

था। पतझड़ शुरू हो गया था। बाग में पत्तियों का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, 'चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देखे, तो समझे कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो बैठा नहीं रहा जाता।'

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिये बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे जाते देखा तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा—"अब तो नहीं रहा जाता जबरू, चलो बगीचे में पत्तियाँ बटोरकर तापें। टाँटे हो जायंगे, तो फिर आकर सोयंगे। अभी तो रात बहुत है।"

जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे-आगे बगीचे की ओर चला। बगीचे में घुप अँधेरा छाया हुआ था और उस अन्धकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदें टप-टप नीचे टपक रही थीं।

एकाएक एक झोंका मेंहदी के फूलों की खुशबू लिये हुए आया।

हल्कू ने कहा—"कैसी अच्छी महक आई जबरू, तुम्हारी नाक में भी कुछ सुगन्ध आ रही है?"

जबरा को कहीं जमीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गई थी। वह उसे चिचोड़ रहा था। हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों का एक ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे, नंगे पाँव गले जाते थे और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठण्ड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छूकर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो उस अथाह अन्धकार को अपने

सिरों पर सँभाले हुए हों। अन्धकार के उस अनन्त सागर में यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उतारकर बगल में दबा ली, और दोनों पाँव फैला दिए, मानो ठण्ड को ललकार रहा हो, 'तेरे जी में जो आए सो कर।' ठण्ड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा—"क्यों जब्बर, अब तो ठण्ड नहीं लग रही है?"

जब्बर ने कूँ-कूँ करके मानो कहा—"अब क्या ठण्ड लगती ही रहेगी!"

"पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं इतनी ठण्ड क्यों खाते?"

जब्बर ने पूँछ हिलाई।

"अच्छा आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें, देखें कौन निकल जाता है। अगर जल गए बच्चा, तो मैं दवा न करूँगा।"

जब्बर ने उस अग्नि-राशि की ओर कातर नेत्रों से देखा।

"मुन्नी से कल न कह देना, नहीं लड़ाई करेगी।"

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया। पैरों में जरा लपट लगी, पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा—"चलो चलो, ऐसे नहीं ऊपर से कूदकर आओ।"

वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

(४)

पत्तियाँ जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अँधेरा छाया हुआ था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर जरा दहक उठती थी, पर एक क्षण में फिर आँखें बन्द कर लेती थी।

हल्कू ने सिर से चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ

एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गर्मी आ गई थी; पर ज्यों-ज्यों शीत बढ़ता जाता था, उसे आलस्य दबाये लेता था।

जबरा जोर से भूँककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हो रहा था कि जानवरों का एक झुण्ड उसके खेत में आया है। शायद नील गायों का झुण्ड था। उनके कूदने और दौड़ने की आवाजें साफ कान में आ रही थीं। फिर ऐसा मालूम हुआ कि वह खेत में चर रही हैं। उनके चबाने की आवाज चर-चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा—'नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ, अब तो कुछ सुनाई नहीं देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ है।'

उसने जोर से आवाज लगाई—"ज़बरा, जबरा!"

जबरा भूँकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आवाज सुनाई दी। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ बैठा था, ऐसे जाड़े-पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असूझ जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज लगाई—"लिहो लिहो! लिहो!!"

जबरा फिर भूँक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फसल तैयार है। कैसी अच्छी फसल है, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किये डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला; पर एकाएक हवा का ऐसा ठण्डा चुभने वाला, बिच्छू के डंक-सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठण्डी देह को गर्माने लगा।

जबरा अपना गला फाड़े डालता है। नील गायें खेत का सफाया किये डालती थीं और हल्कू गर्म राख के पास शान्त बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों ओर से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गर्म जमीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सवेरे जब उसकी नींद खुली तब चारों तरफ धूप फैल गई थी और मुन्नी कह रही थी—"आज क्या सोते ही रहोगे? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया।"

हल्कू ने उठकर कहा—"क्या तू खेत से होकर आ रही है?"

मुन्नी बोली—"हाँ सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला ऐसा भी कोई सोता है? तुम्हारे यहाँ मड़ैया डालने से क्या हुआ?"

हल्कू ने बहाना किया—"मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दर्द हुआ कि मैं ही जानता हूँ।"

दोनों फिर खेत के डाँड पर आये। देखा, सारा खेत रौंदा हुआ पड़ा है और जबरा मड़ैया के नीचे चित्त लेटा है, मानो प्राण ही न हों।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी थी पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिन्तित होकर कहा—"अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।"

हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा—"रात की ठण्ड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।"

४ : : श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

ताई

(१)

"ताऊ जी, हमें लेलगाड़ी (रेलगाड़ी) ला दोगे ?"—कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाँहें फैलाकर कहा—"हाँ बेटा ला देंगे।"

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया, और उसका मुख चूमकर बोले—क्या करेगा रेलगाड़ी का ?"

बालक बोला—"उसमें बैठकर बली दूल जायंगे हम भी जायंगे, चुन्नी को भी ले जायंगे। बाबूजी को नहीं ले जायंगे। हमें लेलगाली नहीं लाकर देते। ताऊजी, तुम ला दोगे, तो तुम्हें ले जायंगे।"

बाबू—"और किसे ले जायगा ?"

बालक दम-भर सोचकर बोला—"बछ औल किछी को नहीं ले जायंगे ?"

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धांगिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—"और अपनी ताई को नहीं ले जायगा ?"

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताईजी उस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बैठी थीं। बालक को उनके मुख का

भाव कुछ अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—"ताई को नहीं ले जायंगे।"

ताईजी सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताऊजी ही को ले जा! मेरे ऊपर दया रख!"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने फिर पूछा—"ताई को क्यों नहीं ले जायगा?"

बालक—"ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं कलतीं।"

बाबू—"जो प्यार करें तो ले जायगा?"

बालक को इसमें कुछ सन्देह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—"क्यों रे बोलता नहीं? ताई प्यार करें तो रेल पर बिठाकर ले जायगा?"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिला-कर स्वीकार कर लिया, परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धांगिनी के पास ले जाकर उनसे बोले—"लो इसे प्यार कर लो, तो यह तुम्हें भी ले जायगा।" परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की यह चुहलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनककर बोली—"तुम्हीं रेल पर बैठकर जाओ, मुझे नहीं जाना है।"

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले—"प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेल में नही बिठायगा।—क्यों रे मनोहर?"

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से धकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर में चोट तो नहीं लगी; पर हृदय में चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया, चुमकार-पुचकारकर

चुप किया, और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला देने का वचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भयपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने के बाद बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—"तुम्हारा यह व्यवहार कैसा है? बच्चे को ढकेल दिया? जो उसके चोट लग जाती तो?"

रामेश्वरी मुँह मटकाकर बोली—"लग जाती तो अच्छा होता, क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे? आप ही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे, और आप ही अब ऐसी बातें करते हैं।"

बाबू साहब कुढ़कर बोले—"इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं?"

रामेश्वरी—"और नहीं किसे कहते हैं? तुम्हें तो अपने आगे किसी का दुःख-सुख सूझता ही नहीं। न जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हें इन बातों की कोई परवा ही नहीं, अपनी चुहल से काम है।"

बाबू—"बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुनकर तो चाहे जैसा जी हो, प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न जाने किस धातु का बना हुआ है!"

रामेश्वरी—"तुम्हारा हो जाता होगा। और, होने को होता भी है, मगर वैसा बच्चा भी तो हो। पराये धन से भी कहीं घर भरता है?"

बाबू साहब कुछ देर चुप रहकर बोले—"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे।"

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोली—"बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो, पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं, नहीं तो ये दिन काहे को देखने

पड़ते। तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी सन्तान के लिए न जाने क्या-क्या करते हैं—पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं; पर तुम्हें इन बातों से क्या काम? रात-दिन भाई-भतीजों में मगन रहते हो।"

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा—"पूजा-पाठ, व्रत सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, वह पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।"

श्रीमती जी कुछ-कुछ रुआसे स्वर से बोलीं—"इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रखा है। ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायं तो काम कैसे चले। सब विश्वास पर ही बैठे रहें, आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे।"

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं, अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गए।

(२)

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन-देन भी है। इनके एक छोटा भाई है। उसका नाम है कृष्ण-दास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु ३५ के लगभग है, और छोटे भाई कृष्णदास की २७ के लगभग। रामजीदास निःसन्तान हैं। कृष्णदास के दो सन्तानें हैं। एक पुत्र—वही पुत्र, जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं—और एक कन्या है। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तानहीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाई की सन्तान को वे अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तानहीनता का बड़ा दुःख है। वह दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्वरी, हथेली पर सिर रखे, किसी चिन्ता में डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठकर अपनी माँ के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा—"आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह से धकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है। कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।"

रामेश्वरी बोली—"तुम्हीं ने मुझे ऐसा बना रखा है। उस दिन उस पण्डित ने कहा था कि हम दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान का जोग है और उपाय करने से सन्तान हो भी सकती है। उसने उपाय भी बताए थे; पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना-न होना तो भगवान् के अधीन है।"

बाबू साहब हँसकर बोले—"तुम्हारी-जैसी सीधी स्त्री भी···क्या कहूँ, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया-भर के झूठे और धूर्त हैं। ये झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते हैं।"

रामेश्वरी तुनककर बोली—"तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं? पण्डित कुछ अपनी तरफ से तो बनाकर कहते ही नहीं हैं। शास्त्र में जो-कुछ लिखा है वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है तो वे भी झूठे हैं। अँगरेज़ी

क्या पड़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादे के ज़माने से चली आई हैं, उन्हें भी झूठा बताते हैं।"

बाबू साहब—"तुम बात तो समझतीं नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है। सम्भव है, वह सच्चा हो। परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो-एक छोट-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते हैं और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?"

रामेश्वरी—"हूँ, सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक बड़े सच्चे हो! अच्छा, एक बात पूछती हूँ। भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?"

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर तक चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय में सन्तान का सुख देखने की इच्छा न हो? परन्तु किया क्या जाय? जब नहीं है, और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ! इसके सिवा जो बात अपनी सन्तान से होती, वही भाई की सन्तान से भी हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना इन पर भी है। जो आनन्द उनकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय।"

रामेश्वरी कुढ़कर बोली—"तुम्हारी समझ का मैं क्या करूँ? इसी से तो रात-दिन जला करती हूँ। भला यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा?"

बाबू साहब हँसकर बोले—"अरे, तुम भी कहाँ की पोच बातें लाईं। नाम सन्तान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे

कितने दिन हो चुके। इसी प्रकार जितने महात्मा हो गए हैं, उन सबका नाम क्या उनकी सन्तान ही की बदौलत चल रहा है? सच पूछो, तो सन्तान से जितना नाम चलने की आशा रहती है, उतनी ही नाम डूब जाने की भी सम्भावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरधारीलाल कितने नामी आदमी थे। उनकी सन्तान कहाँ है? पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है, और अभी न जाने कितने दिनों तक चला जायगा।"

रामेश्वरी—"शास्त्र में लिखा है कि जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं होती?"

बाबू—"मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम? यदि मुक्ति होना मान भी लिया जाय तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों की मुक्ति हो ही जाती है? मुक्ति का भी क्या सहज उपाय है? ये जितने पुत्र वाले हैं, सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोली—"अब तुमसे कौन बकवाद करे! तुम तो अपने सामने किसी की मानते ही नहीं।"

(२)

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु भद्दी-से-भद्दी और बिलकुल काम में न आने वाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपनी समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान् क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता, इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही

थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ता हुआ आया, और वह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गईं। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सतृष्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हें देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चों की माता हैं।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खेलते रहे। सहसा उसी समय किसी के आने को आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठकर चली गई।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी।"—कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आए। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़पकर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद-सी टूटी। पति को बच्चों में मगन होते देखकर उनकी भौंहें तन गईं। बच्चों के प्रति हृदय में फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जाग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आए, और मुसकराकर बोले—"आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं। इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।"

रामेश्वरी को पति की वह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी कमज़ोरी पर बड़ा दुःख हुआ। केवल दुःख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमज़ोरी पति पर प्रकट हो गई, यह बात उनके लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—"इसी लिए मैं कहता हूँ कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी, परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग्य की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई। उन्होंने कुढ़कर मन में कहा—'इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जायं, पाप कटे! आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्यार को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।'

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा—"अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है, छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।"

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं—"मुझे क्या पड़ी है, जो मैं प्रेम करूँगी? तुम्हीं को मुबारक रहे! निगोड़े आप ही आ-आ कर घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी-कभी हँसना-बोलना पड़ता ही है। अभी परसों ज़रा यों ही धकेल दिया, उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण हैं, न यों चैन, न वों चैन!"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"न जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी-खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी, मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती है। न जाने मेरी बातों में कौन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है तो न कहा करूँगा। पर इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े-सिगोड़े इत्यादि अपशब्द निकाले तो अच्छा न होगा। तुमसे मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।"

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आँखों द्वारा निकालने लगीं।

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था वैसे-ही-वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी, और रामेश्वरी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण ही वह पति की नज़र से गिरती जा रही है, तब उनके हृदय में बड़ा तूफान उठा। उन्होंने सोचा—'पराए बच्चों के पीछे यह मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं, मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए ये बच्चे ही सब-कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं! दुनिया मरती जाती है, पर इन दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गए! न ये होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे उस दिन घी के दीये जलाऊँगी। इन्होंने ही मेरे घर का सत्यानाश कर रखा है।'

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थीं उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं; अपनी निज की सन्तान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद जब उनके विचार स्वयं उन्हीं को कष्टदायक मालूम होने लगे, तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए उठकर टहलने लगीं।

वह टहल ही रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उनकी भृकुटी चढ़ गई, और वह छत की चहारदीवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गई।

सन्ध्या का समय था। आकाश में रंग-बिरंगे पतंग उड़ रहे थे। मनोहर कुछ देर तक पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कटकर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनन्द आवे। देर तक

पतंग गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़कर रामेश्वरी के पास आया और उनकी टाँगों में लिपटकर बोला—"ताई, हमें पतंग मँगा दो।"

रामेश्वरी ने झिड़ककर कहा—"चल हट, अपने ताऊ से जा कर माँग।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ-सा होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुण-स्वर में कहा—"ताई, पतंग मँगा दो; हम भी उड़ायंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन कहा—'यदि यह मेरा पुत्र होता तो मुझसे बढ़कर भाग्यवान् स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़ा-मरा कितना सुन्दर है, और कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है! यही जी चाहता है कि उठाकर छाती से लगा लूँ।

यह सोचकर वह उसके सिर पर हाथ फेरने वाली ही थीं कि इतने में मनोहर उन्हें मौन देखकर बोला—"तुम हमें पतंग नहीं मँगवाओगी तो ताऊजी से कहकर तुम्हें पिटवायंगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया वह झिड़ककर बोलीं—"जा, कह दे, अपने ताऊ जी से। देखूँ वह मेरा क्या कर लेंगे।"

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया, और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतंग को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—'यह सब ताऊ के दुलार का फल है कि बालिश्त-भर का लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे इस दुलार पर बिजली टूटे।'

उसी समय आकाश से एक पतंग कटकर उसी छत की ओर आई, और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई।

छत के चारों ओर चहार दीवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थीं केवल वहीं पर एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ जा सकते थे। रामेश्वरी सटी हुई खड़ी थीं। मनोहर ने पतंग को छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दौड़कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रहीं। मनोहर उनके पास से होकर छज्जे पर चला गया, और उनसे दो फीट की दूरी पर खड़ा होकर पतंग को देखने लगा। पतंग छज्जे पर से होती हुई नीचे, घर के आँगन में जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुँडेर पर रखकर मनोहर ने नीचे आँगन में झाँका और पतंग को आँगन में गिरते देखकर प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा, परन्तु घूमते समय मुँडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुँडेर आ गई। वह उसे पकड़कर लटक गया, और रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—"ताई !" रामेश्वरी ने धड़कते हुए हृदय से घटना को देखा। उनके मन में आया कि 'अच्छा है, मरने दो सदा का पाप कट जायगा।' यह सोचकर वह एक क्षण के लिए रुकीं। उधर मनोहर के हाथ मुँडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—"अरी ताई !" रामेश्वरी की आँखें मनोहर की आँखों से जा मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देखकर रामेश्वरी का कलेजा मुँह को आ गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहर को पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुँडेर छूट गई। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मारकर छज्जे पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वह ज़ोर से चिल्ला उठतीं, और कहती—"देखो-देखो वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो।" कभी वह

कहतीं—"बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ, हाँ, मैं चाहती, तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।" इसी प्रकार के प्रलाप यह किया करतीं।

मनोहर की टाँग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई। वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—"मनोहर कैसा है ?"

रामजीदास ने उत्तर दिया—"अच्छा है।"

रामेश्वरी—"उसे मेरे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बड़े प्यार से हृदय लगाया। आँखों से आंसुओं की झड़ी लग गई। हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गईं। अब वह मनोहर की बहन चुन्नी से भी द्वेष-घृणा नहीं करतीं। और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

५ : : श्री रायकृष्णदास

अन्तःपुर का आरम्भ

हूँ-ऊँ, हूँ-ऊँ, हूँ-ऊँ के वज्र-निनाद से सारा जंगल दहल उठा।

उस गम्भीर, भयावनी ध्वनि ने तीन बार, और उसकी प्रतिध्वनि ने सात-सात बार, सातों पर्वत-श्रेणियों को हिलाया। और जब यह हुँ-हुँकार शांत हुआ, तब निशीथ का सन्नाटा छा गया, क्योंकि पशु-पक्षी किसी की मजाल न थी कि जरा सकपकाता भी।

अब केसरी ने एक बार दर्प से आकाश की ओर देखा, फिर गरदन घुमा-घुमाकर अपने राज्य वन-प्रान्त की चारों सीमाओं को परताल डाला। उसके घुँघराले केश उसके प्रपुष्ट कन्धों पर इठला रहे थे। वह अकड़ता हुआ, डकराता हुआ, निर्द्वन्द्व मस्तानी चाल से उस टीले से नीचे उतरने लगा, जिस पर से उसने अभी-अभी गर्जना की थी।

उसने एक बार अपनी पूँछ उठाई। उसे कुछ क्षण चँवर की तरह डुलाता रहा, फिर नीचे करके एक बार सिंहावलोकन करता हुआ चलने लगा। उसके घुटनों की धीमी चड़-मड़ भी जी दहला देने वाली थी।

ऊपर पहाड़ी में एक गुफा थी। बहुत बड़ी नहीं, छोटी-सी ही। आजकल के सभ्य कहलाने वाले—प्रकृति से लाखों कोस दूर—मनुष्य उसमें कठिनता से विश्राम कर सकें; लेकिन यह उस समय की बात है, जब मनुष्य वनौकस था! कृतयुग के आरम्भ की कहानी है।

गुहा का आधा मुँह एक लता के अञ्चल से ढका था। आधे में एक मनुष्य खड़ा था। हाँ, मनुष्य; हम लोगों का पूर्वज, पूरा लम्बा, ऊँचा पचहथा जवान, दैत्य के सदृश बली, मानो उसका शरीर लोहे का बना हो। उसके बायें हाथ में धनुष था और दाहिने हाथ में बाण। कमर में कृष्णाजिन बँधा हुआ था—मौञ्जी मेखला से। पीठ पर रुरु के अजिन का उत्तरीय था। उस खाल की दो टाँगों की—एक आगे की, दूसरी पीछे की, एक दाहिनी को दूसरी बाईं की—कैंची की गाँठ छाती के पास बँधी हुई थी, बाकी दो लटक रही थीं। चारों में खुर लगे थे। उस पूर्वज का शरीर रोएँ की घनी तह से ढका हुआ था। सिर पर बिखरे बड़े-बड़े बाल। गहबर लट पड़ी डाढ़ी। सहज गौर वर्ण, धूप, वर्षा जाड़े से पककर तँबिया गया था। शरीर पर जगह-जगह गट्ठे थे—पेड़ चढ़ने के, पहाड़ पर चढ़ने के रेंगने के फिसलने के, क्योंकि पुरातन नर की जीवन-चर्य्या के ये ही समय-यापन थे। और, एक बड़ा भारी घट्ठा दाहिने हाथ की मुट्ठी पर था—प्रत्यंचा खींचने का। अरने भैंसे के सींग का बना, पुरसा-भर ऊँचा धनुष; उसी की कड़ी मोटी ताँत की प्रत्यञ्चा को खींचते-खींचते, केवल यह घट्ठा ही नहीं पड़ गया था, प्रत्युत बाँहें भी लम्बी हो गई थीं। वे घुटना चूमना चाहती थीं।

उस पुरुष के पीछे थी आध्या नारी। उसको चीतल की चित्र उत्तरीय थी, और कटि में एक बल्कल। एक सुन्दर फूली लता की टहनी सिर से लिपटी थी, और बिखरी हुई लटों में उलझी थी! कानों में छोटे-छोटे सींग के टुकड़े झूल रहे थे, हाथों में बूढ़े हाथियों के पोले दाँतों के टुकड़े पड़े हुए थे। हाँ वे ही—चूड़ियों के पूर्वज।

वह अपने पुरुष के कन्धे का सहारा लिये उसी पर अपने दोनों हाथ रखे और ठुड्डी गड़ाये खड़ी थी।

पुरुष के अङ्ग फड़क रहे थे। उसने स्त्री से कहा—"देखो! आज फिर आया—कल घायल कर चुका हूँ, तिस पर भी।"

"तब आज चलो, निपटा डालें।"

"हाँ, अभी चला।"

पुरुष अपने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने लगा, और स्त्री ने अपना, मठारे हुए चकमक पत्थर के फल वाला, भाला सँभाला! वह उसके बगल में ही दीवार के सहारे खड़ा किया था। भाला लेकर उसने पूछा—

"अभी चला' ? मैं भी तो चलूँगी।"

"नहीं तुम क्या करोगी ? क्या तुम्हें मेरी शक्ति पर सन्देह है ?"

"छीः! परन्तु मैं यहाँ अकेली क्या करूँगी ?"

"यहाँ से मेरा खेल देखना।"

"क्यों, मुझे ले चलने में हिचकते क्यों हो ?"

"नहीं, तुम्हारी रक्षा का खयाल है।"

"क्यों आज तक मेरी रक्षा किसने की है ?"

"हाँ, मैं यह नहीं कहता कि तुम अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं, पर...."

"पर,......?"

"मेरा जी डरता है।"

"क्यों ?"

"तुम सुकुमारी हो।"

आध्या का मुँह लाल हो उठा। क्रोध से नहीं, यह एक नये प्रकार की स्तुति थी। इसकी रमणीयता से उसका हृदय गुदगुदा उठा।

उसने मुस्कराकर पूछा—"तो मैं क्या करूँ ?"

"यहीं बैठी-बैठी तमाशा देखो। मैं एक झंखाड़ लगा कर गुफा का मुँह और भी छिपाये देता हूँ। आजकल इन चतुष्पदों ने हम द्विपदों से रार ठान रखी है। देखना—सावधान!"

"जाओ! जाओ! आज मुझे छलकर तुम मेरे आनन्द में बाधक हुए हो—समझ लूँगी!"

"नहीं कहना मानो ! हृदय आगा-पीछा करता है, नहीं तो...."

"अच्छा, लेकिन झखाड़ लगाकर क्या करोगे ? क्या मैं इतनी निहत्थी हो गई !"—शक्ति ने मुस्करा दिया।

"तो चला"—कहकर पुरुष जब तक चले-चले, तब तक नारी ने उसका हाथ पकड़ लिया—'लेकिन देखो, उसके रक्त से तुम्हें सजाऊँगी मैं ही। और, किसी दूसरे को उसकी खाल भी न लेने देना।"

"नहीं, मैं उसे यहीं उठाए लाता हूँ। अब देर न कराओ। देखो वह जा रहा है—निकल न जाय !"

नारी ने उत्तेजना दी—"हाँ लेना बढ़ के !" पुरुष ने एक बार छाती फुलाकर चीत्कार किया। सिंह ने वह चीत्कार सुना। सिर उठाकर पुरुष की ओर देखा। वहीं तनकर खड़ा हो गया और पुरुष भी तूफान की तरह उसकी ओर तीर संधाते हुए बढ़ा।

एक क्षण में दोनों शत्रु आमने-सामने थे। सिंह टूटा ही चाहता था कि चकमक के फल वाला बाण उसका टीका फोडता हुआ सन-न-न करता निकल गया। गुहा में से किलकारी की ध्वनि सुनकर पुरुष का उत्साह और भी बढ़ उठा।

इसी क्षण में म्रियमाणसिंह दूसरे आक्रमण की तैयारी में था कि मनुष्य ने उसे गेंद की तरह समूचा उठा लिया और अपने पुरसे तक ले जाकर धड़ाम से पटक दिया। साथ ही, सिंह ने अपने पंजों से अपना ही मुँह नोचते-नोचते, सिर फेंकते-फेंकते ऐंठते हुए, पुनः एक हल्की पल की पछाड़ खाकर अपना दम तोड़ दिया।

❀ ❀ ❀

नारी गुहा-द्वार के सहारे खड़ी थी। उसका आधा शरीर लता की ओट में था। वहीं से वह अपने पुरुष का पराक्रम देख रही थी; आनन्द की कूकें लगा रही थी ?

❀ ❀ ❀

हाँ, उसी दिन अंतःपुर का आरम्भ हुआ था।

७ : : श्री जैनेन्द्रकुमार

एक गौ

हिसार और उसके आस-पास के हिस्से को हरियाना कहते हैं। यहाँ के लोग खूब तगड़े होते हैं, गाय-बैल और भी तन्दुरुस्त और कद्दावर होते हैं। वहाँ की नस्ल मशहूर है।

उसी हरियाने के एक गाँव में एक जमींदार रहता था। दो पुश्त पहले उसके घराने की अच्छी हालत थी। घी-दूध था, बाल-बच्चे थे, मान-प्रतिष्ठा थी। पर धीरे-धीरे अवस्था बिगड़ती गई। आज हीरासिंह को यह समझ नहीं आता है कि अपनी बीवी, दो बच्चे, खुद और अपनी सुन्दरिया गाय की परवरिश कैसे करे।

राज की अमलदारी बदल गई है, और लोगों की निगाहें भी फिर गई हैं। शहर बड़े से और बड़े हो गए हैं और वहाँ ऐसी ऊँची-ऊँची हवेलियाँ खड़ी होती जाती हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता है। कल-कारखाने और पुतलीघर खड़े हो गए हैं। बाई-सिकलें और मोटरें आ गई हैं। इनसे जिन्दगी तेज पड़ गई है और बाजार में मँहगाई आ गई है। इधर गाँव उजाड़ हो गए हैं और खुश-हाली की जगह बेचारगी फैल रही है। हरियाने के बैल खूबसूरत तो अब भी मालूम होते हैं; और उन्हें देखकर खुशी भी होती है, लेकिन अब उनकी उतनी माँग नहीं है। चुनाँचे हीरासिंह भी अपने बाप-

दादों के समान जरूरी आदमी अब नहीं रह गया है। हीरासिंह की बहुत-सी बातें बहुत कम समझ में आती हैं। वह आँख फाड़-कर देखना चाहता है कि यह क्या बात है कि उसके घराने का महत्त्व इतना कम रह गया है। अन्त में उसने सोचा कि यह भाग्य है, नहीं तो और क्या?

उसकी सुन्दरिया गाय डील-डौल में इतनी बड़ी और इतनी तन्दुरुस्त थी कि लोगों को ईर्ष्या होती थी। उसी सुन्दरिया को अब हीरासिंह ठीक-ठीक खाना नहीं जुटा पाता था। इस गाय पर उसे गर्व था। बहुत ही मुहब्बत से उसे उसने पाला था। नन्ही बछिया थी, तब से वह हीरासिंह के यहाँ थी। हीरासिंह को अपनी गरीबी का अपने लिए इतना दुःख नहीं था, जितना उस गाय के लिए। जब उसके भी खाने-पीने में तोड़ आने लगी तो हीरासिंह के मन को बड़ी बिथा हुई। क्या वह उसको बेच दे? इसी गाँव के पटवारी ने दो सौ रुपए उस गाय के लगा दिए थे। दो सौ रुपए थोड़े नहीं होते। लेकिन अव्वल तो सुन्दरिया को बेचे कैसे? इसमें उसकी आत्मा दुखती थी। फिर इसी गाँव में रहकर सुन्दरिया दूसरे के यहाँ बँधी रहे और हीरासिंह अपने बाप-दादों के घर में बैठा टुकुर-टुकुर देखा करे, यह हीरासिंह से कैसे सहा जायगा।

उसका बड़ा लड़का जवाहरसिंह बड़ा तगड़ा जवान था। उन्नीस वर्ष की उम्र थी, मसें भीगी थीं, पर इस उमर में वह अपने से ड्यौढ़े को कुछ नहीं समझता था। सुन्दरिया गाय को वह मौसी कहा करता था। उसे मानता भी उतना था। हीरासिंह के मन में दुर्दिन देखकर कभी गाय को बेचने की बात उठती थी तो जवाहरसिंह के डर से रह जाता था। ऐसा हुआ तो जवाहर डंडा उठाकर, रार मोल लेकर, उसको फिर वहाँ से खोलकर नहीं ले जायगा, इसका भरोसा हीरासिंह को नहीं था। जवाहरसिंह उजड्ड ही तो है। सुन्दरिया के मामले में

भला वह किसी की सुनने वाला है ? ऐसे नाहक रार के बीज बढ़ जायंगे और क्या ?

पर दुर्भाग्य भी सिर पर से टलता न था। पैसे-पैसे की तंगी होने लगी थी। और तो सब भुगत लिया जाय पर अपने आश्रित जनों की भूख कैसे भुगती जाय ?

एक दिन जवाहरसिंह को बुलाकर कहा—"मैं दिल्ली जाता हूँ। वहाँ बड़ी-बड़ी कोठियाँ हैं, बड़े-बड़े लोग हैं। हमारे गाँव के कितने ही आदमी वहाँ हैं। सो कोई नौकरी मिल ही जायगी। नहीं तो तुम्हीं तो सोचो, ऐसे कैसे काम चलेगा। इतने तुम यहाँ देख-भाल रखना। वहाँ ठीक होने पर तुम सबको भी बुला लूँगा।"

दिल्ली जाकर एक सेठ के यहाँ चौकीदार की नौकरी उसे मिल गई। हवेली के बाहर ड्योढ़ी में एक कोठरी रहने को भी मिल गई।

एक रोज सेठ ने हीरासिंह से कहा—तुम तो हरियाने की तरफ के रहने वाले हो ना। वहाँ की गाय बड़ी अच्छी होती हैं। हमें दूध की तकलीफ है उधर की एक अच्छी गाय का बन्दोबस्त हमारे लिए करके दो।"

हीरासिंह ने पूछा—"कितने दूध की और कितनी कीमत की चाहिए? "

सेठ ने कहा—कीमत जो मुनासिब हो देंगे; पर दूध थन के नीचे खूब होना चाहिए; गाय खूब सुन्दर तगड़ी होनी चाहिए।

हीरासिंह सुन्दरिया की बात सोचने लगा। उसने कहा—"एक है तो मेरी निगाह में, पर उसका मालिक बेचे तब है।"

सेठ ने कहा—"कैसी गाय है ?"

हीरासिंह ने कहा—"गौ तो ऐसी है कि माँ के समान है और दूध देने में कामधेनु। पन्द्रह सेर दूध उसके तले उतरता है।"

सेठ ने पूछा—"तो उसका मालिक किसी शर्त पर नहीं बेच सकता ?"

हीरासिंह—"उसके दो सौ रुपए लग गए हैं।"

सेठ—"दो सौ ! चलो, पाँच हम और ज्यादा देंगे।"

पाँच रुपए और ज्यादा की बात सुनकर हीरा को दुःख हुआ। वह कुछ शर्म से और कुछ ताने में मुस्कराया भी।

सेठ ने कहा—"ऐसी भी क्या बात है ! दो-चार रुपए और बढ़ती दे देंगे। बस ?"

हीरासिंह ने कहा—"अच्छी बात है। मैं कहूँगा।"

हीरासिंह को इस घड़ी दुःख बहुत हो रहा था। एक तो इसलिए कि वह जानता था कि गाय बेचने के लिए वह राजी होता जा रहा है। दूसरे दुःख इसलिए भी हुआ कि उसने सेठ से सच्ची बात नहीं कही।

सेठ ने कहा—"देखो, गाय अच्छी है और उसके तले पन्द्रह सेर दूध पक्का है, तो पाँच-दस रुपए के पीछे बात कच्ची मत करना।"

हीरासिंह ने तब लज्जा से कहा—"जी, सच्ची बात यह है कि गाय वह अपनी ही है।"

सेठजी ने खुश होकर कहा—"तब तो फिर ठीक बात है। तुम तो अपने आदमी ठहरे। तुम्हारे लिए जैसे दो सौ वैसे ही पाँच। गाय कब ले आओगे ? मेरी राय में आज ही चले जाओ।"

हीरासिंह शरम के मारे कुछ बोल नहीं सका। उसने सोचा था कि गौ आखिर बेचनी तो होगी ही। अच्छा है कि वह गाँव से दूर कहीं इसी जगह रहे। रुपए पाँच कम, पाँच ज्यादा—यह कोई ऐसी बात नहीं। पर गाँव के पटवारी के यहाँ तो सुन्दरिया उससे दी न जायगी। उसने सेठ के जवाब में कहा—"जो हुक्म। मैं आज ही चला जाता हूँ लेकिन एक बात है—मेरा लड़का जवाहर राजी हो जाय तब है। वह लड़का बड़ा अक्खड़ है और गाय को प्यार भी बहुत करता है।"

सेठ ने समझा, यह कुछ और पैसे पाने का बहाना है। बोला "अच्छा, दो सौ पाँच ले लेना। चलो दो सौ सात सही। पर गाय लाओ तो। दूध पन्द्रह सेर पक्के की शरत है।

हीरासिंह लाज से गड़ा जाने लगा। वह कैसे बताए कि रुपए की बात बिलकुल नहीं है। तिस पर ये सेठ तो उसके अन्नदाता हैं। फिर ये ऐसी बातें क्यों करते हैं? उसे जवाहर की तरफ से सचमुच शंका थी। लेकिन इन गरीबी के दिनों में गाय दिन-पर-दिन एक समस्या होती जाती थी। उसको रखना भारी पड़ रहा था। पर अपने तन को क्या काटा जाता है? काटते कितनी वेदना होती है। यही हीरासिंह का हाल था। सुन्दरिया क्या केवल एक गौ थी। वह तो गौ 'माता' थी—उनके परिवार का अंग थी। उसी को रुपए के मोल बेचना असान काम न था। पर हीरासिंह को यह ढाढस था कि सेठ के यहाँ रहकर गौ उसके आँखों के आगे तो रहेगी। सेवा-टहल भी यहाँ वह गौ की कर लिया करेगा। उसकी टहल करके यहाँ उसके चित्त को कुछ तो सुख रहेगा। तब उसने सेठ से कहा—"रुपए की बात बिलकुल नहीं है सेठ जी। वह लड़का जवाहर ऐसा ही है। पूरा बेबस जीव है। खैर, आप कहें, तो आज मैं जाता हूँ। उसे समझा-बुझा सका, तो गौ को लेता ही आऊँगा। उसका नाम हमने सुन्दरिया रखा है।"

"हाँ, लेते आना। पर पन्द्रह सेर की बात है ना? इतमीनान हो जाय, तब सौदा पक्का रहेगा। कुछ रुपए चाहिएं तो ले जाओ।"

हीरासिंह बहुत ही लज्जित हुआ। उसकी गौ के बारे में बे-एतबारी उसे अच्छी नहीं लगती थी। उसने कहा—"जी, रुपए कहाँ जाते हैं फिर मिल जायंगे। पर यह कहे देता हूँ कि गाय वह एक ही है। मुकाबले की दूसरी मिल जाय, तो मुझे जो चाहो कहना।"

सेठजी ने स्नेह-भाव से सौ रुपए मँगाकर उसी वक्त हीरासिंह को थमा दिए और कहा—"देखो हीरासिंह, आज ही चले जाओ, और गाय कब तक आ जायगी? परसों तक?"

हीरासिंह ने कहा—"यहाँ से पचास कोस गाँव है। तीन रोज तो आने-जाने में लग जायंगे।"

सेठजी ने कहा—"पचास कोस? तीस कोस की मंजिल एक दिन

में की जाती है। तुम मुझको क्या समझते हो ?"

तीस कोस की मंजिल सेठ पैदल एक दिन छोड़ तीन दिन में भी कर लें तो हीरासिंह जाने। लेकिन वह कुछ बोला नहीं।

सेठ ने कहा—"अच्छा, तो चौथे दिन गाय यहाँ आ जाय।"

हीरासिंह ने कहा—"जी, कम-से-कम पूरे पाँच रोज तो लगेंगे ही।"

सेठजी ने कहा—"पाँच ?"

हीरासिंह ने विनीत भाव से कहा—"दूर जगह है सेठजी !"

सेठजी ने कहा—"अच्छी बात है। पर देर मत लगाना, यहाँ काम का हर्ज होगा, जानते हो ? खैर, इन दिनों तुम्हारी तनख्वाह न काटने को कह देंगे।"

हीरासिंह ने जवाब में कुछ नहीं कहा, और वह उसी रोज चला भी गया।

ज्यों-त्यों जवाहरसिंह को समझा-बुझाकर गाय वह ले आया। देखकर सेठ बड़े खुश हुए। सचमुच वैसी सुन्दर स्वस्थ गौ उन्होंने अब तक न देखी थी। हीरासिंह ने खुद उसे सानी-पानी किया, सहलाया और अपने ही हाथों उसे दुहा। दूध पन्द्रह सेर से कुछ ऊपर ही बैठा। सेठजी ने खुशी से दो सौ के ऊपर सात रुपए और हीरा को दिये और अपने घोसी को बुलाकर गौ उसके सुपुर्द की।

रुपए तो लिये, लेकिन हीरासिंह का जी भरा आ रहा था। जब सेठजी का घोसी गाय को ले जाने लगा, तब गाय उसके साथ चलना ही नहीं चाहती थी। घोसी ने झल्लाकर उसे मारने को रस्सी भी उठाई, लेकिन सेठजी ने मना कर दिया। वह गौ इतनी भोली मालूम होती थी कि सचमुच घोसी का हाथ भी उसे मारने को हिम्मत से ही उठ सका था। अब जब वह हाथ इस भाँति उठ करके भी रुका रह गया तब घोसी को भी खुशी हुई क्योंकि गौ की आँखों के कोये में गाढ़े-गाढ़े आँसू भर रहे थे। वे आँसू धीमे-धीमे बहने भी लगे।

हीरासिंह ने कहा—"सेठजी, इस गौ की नौकरी पर मुझे कर

दीजिए, चाहे तनख्वाह में दो रुपए कम कर दीजिएगा।"

सेठजी ने कहा—"हीरासिंह, तुम्हारे-जैसा ईमानदार चौकीदार हमें दूसरा कौन मिलेगा? तनख्वाह तो हम तुम्हारी एक रुपया और भी बढ़ा सकते हैं पर तुमको ड्योढ़ी पर ही रहना होगा।"

उस समय हीरासिंह को बहुत दुःख हुआ। वह दुःख इस बात से और दुःसह हो गया कि सेठ का विश्वास उस पर है। यह गौ को सम्बोधन करके बोला—"जाओ, बहिनी! जाओ।"

गौ ने सुनकर मुँह जरा ऊपर उठाकर हीरासिंह की तरफ देखा, मानो पूछती हो, जाऊँ? तुम कहते हो जाऊँ?

हीरासिंह उसके पास आ गया। उसने गले पर थपथपाया, माथे पर हाथ फेरा, गलबन्ध सहलाया और काँपती वाणी में कहा—"जाओ बहिनी सुन्दरिया, जाओ। मैं कहीं दूर थोड़े ही हूँ। मैं तो यहाँ ही हूँ।"

हीरासिंह के आशीर्वाद में भीगती हुई गौ चुप खड़ी थी। जाने की बात पर फिर ज़रा मुँह ऊपर उठाया और भरी आँखों से उसे देखती हुई मानो पूछने लगी—"जाऊँ? तुम कहते हो जाऊँ?"

हीरासिंह ने थपथपाते हुए पुचकारकर —"जाओ बहिनी! सोच न करो।" फिर घोसी को आश्वासन देकर कहा—"लो, अब ले जाओ, अब चली जायगी।" यह कहकर हीरासिंह ने गाय के गले की रस्सी अपने हाथों उस घोसी को थमा दी।

गाय फिर चुपचाप डग-डग घोसी के पीछे-पीछे चली गई। हीरासिंह एकटक देखता रहा। उसने आँसू नहीं आने दिए। हाथ के नोटों को उसने जोर से पकड़ रखा। नोटों पर वह मुट्ठी इतनी जोर से कस गई कि अगर उन नोटों में जान होती तो, बेचारे रो उठते। वे कुचले-कुचलाए मुट्ठी में बँधे रह गए।

उसके बाद सेठजी वहाँ से चले गए और हीरासिंह भी चलकर अपनी कोठरी में आ गया। कुछ देर वह उस हवेली की ड्योढ़ी के बाहर

शून्य भाव से देखता रहा। भीतर हवेली थी, बाहर बिछा शहर था, जिसके पार खुला मैदान और खुली हवा थी और उनके बीच में आने-जाने का रास्ता छोड़े हुए फिर भी उस रास्ते को रोके हुए, यह ड्योढ़ी थी। कुछ देर तो वह इसे देखता रहा, फिर मुँह झुकाकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। अनबूझ भाव से वह इस व्याप्त-विस्तृत शून्य में देखता रह गया।

लेकिन अगले दिन गड़बड़ उपस्थित हुई। सेठजी ने हीरासिंह को बुलाकर कहा—"यह तुम मुझे धोखा तो नहीं देना चाहते? गाय के नीचे से सवेरे पाँच सेर भी तो दूध नहीं उतरा। शाम को भी यही हाल रहा है। मेरी आँखों में तुम धूल झोंकना चाहते हो।"

हीरासिंह ने बड़ी कठिनाई से कहा—"मैंने तो पन्द्रह सेर से ऊपर दुहकर आपके सामने दे दिया था।"

"दे दिया होगा। लेकिन अब क्या बात हो गई? जो न तुमने उसे कोई दवा खिला दी है?"

हीरासिंह का जी दुःख और ग्लानि से कठिन हो आया। उसने कहा—"दवा मैंने नहीं खिलाई और कोई दवा दूध ज्यादह नहीं निकलवा सकती। इसके आगे और मैं कुछ नहीं जानता।"

सेठजी ने कहा—"तो जाकर अपनी गाय को देखो। अगर दूध नहीं देती, तो बता मुझे मुफ़्त का जुर्माना भुगतना है?"

हीरासिंह गाय के पास गया। वह उसको गर्दन से लगकर खड़ा हो गया। उसने गाय को चूमा, फिर कहा—"सुन्दरिया, तू मेरी रुसवाई क्यों कराती है? तेरे बारे में मैं किसी से धोखा करूँगा?"

गाय ने उसी भाँति मुँह ऊपर उठाया, मानो पूछा—'मुझे कहते हो? बोलो, मुझे क्या कहते हो?'

हीरासिंह ने घोसी से कहा—"बंटा लाओ तो!"

घोसी ने कहा—"मैं आध घण्टा पहले तो दुह चुका हूँ।"

हीरासिंह ने कहा—"तुम बंटा लाओ।"

उसके बाद साढ़े तेरह सेर दूध उसके तले से पक्का तौलकर हीरासिंह ने घोसी को दे दिया। कहा—"यह दूध सेठजी को दे देना। फिर गौ के गले पर अपना सिर डालकर हीरासिंह बोला—"सुन्दरी। देख, मेरी ओछी मत कर। तू यहाँ है, मैं दूर हूँ, तो क्या उसमें मुझे सुख है ?"

गौ मुँह झुकाये वैसे ही खड़ी रही।

"देखना सुन्दरिया ! मेरी रुसवाई न करना।" गद्‌गद् कण्ठ से यह कहकर उसे थपथपाते हुए हीरासिंह चला गया।

पर गौ अपनी बिथा किससे कहे ? कह नहीं पाती, इसी से सही नहीं जाती। क्या वह हीरासिंह की रुसवाई चाहती है ? उसे सह सकती है ? लेकिन दूध नीचे आता ही नहीं, तब क्या करे ? वह तो चढ़-चढ़ जाता है, सूख-सूख जाता है, गौ बेचारी करे तो क्या ?

सो फिर शिकायत हो चली। आए दिन बखेड़े खड़े होने लगे। शाम इतना दूध दिया, सबेरे उससे भी कम दिया। कल तो चढ़ा ही गई थी। इतने उनहार-मनुहार किये, बस में ही न आई। गाय है कि बवाल है। जी को एक सांमत ही पाल ली।

सेठ ने कहा—"क्यों हीरासिंह, यह क्या है ?"

हीरासिंह ने कहा—"मैं क्या जानता हूँ—"

सेठ ने कहा—"क्या यह सरासर धोखा नहीं है ?"

हीरासिंह चुप रह गया।

सेठ ने कहा—"ऐसा ही है तो ले जाओ अपनी गाय और रुपए मेरे वापिस करो।"

लेकिन रुपए हीरासिंह गाँव भेज चुका था, और उसमें से काफी रकम वहाँ के मकान की मरम्मत में काम आ चुकी थी। हीरासिंह फिर चुप रह गया।

सेठजी ने कहा—"क्या कहते हो ?"

हीरासिंह क्या कहे ?

सेठजी ने कहा—"अच्छा, तनख्वाह में से रकम कटती जायगी और

जब पूरी हो जायगी, तो गाय अपनी ले जाना।"

हीरासिंह ने सुन लिया और सुनकर वह अपनी ड्योढ़ी में आ गया। उस ड्योढ़ी के इधर हवेली है, उधर शहर बिछा है, जिसके पार खुला मैदान है और खुली हवा है। दोनों ओर टुक-देर शून्य भाव से देखकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

अगले दिन सवेरे से ही एक प्रश्न भिन्न-भिन्न प्रकार की आलोचना-विवेचना का विषय बना हुआ था। बात यह थी कि सवेरे बहुत-सा दूध ड्योढ़ी पर बिखरा हुआ पाया गया। उससे पहली शाम को सुन्दरी गाय ने दूध देने से बिलकुल इन्कार कर दिया था। उसे बहलाया गया, फुसलाया गया, धमकाया और पीटा भी गया था। फिर भी वह राह पर न आई थी। अब यह इतना सारा दूध यहाँ कैसे बिखरा है? यह यहाँ आया तो कहाँ से आया?

लोगों का अनुमान था कि कोई दूध लेकर ड्योढ़ी में आया था, या ड्योढ़ी में जा रहा था, तभी उसके हाथ से यह बिखर गया है। अब वह दूध लेकर आने वाला आदमी कौन हो सकता है? लोगों का गुमान यह था कि हीरासिंह वह व्यक्ति हो सकता है। हीरासिंह चुप-चाप था। वह लज्जित और सचमुच अभियुक्त मालूम होता था। हीरा-सिंह के दोषी होने का अनुमान या कारण यह भी था कि हवेली के और नौकर उससे प्रसन्न न थे। वह नौकर के ढंग का नौकर ही न था। नौकरी से आगे बढ़कर स्वामि-भक्ति का भी उसे चाव था जो कि नौकर के लिए असह्य दुर्गुण नहीं तो और क्या है?

सेठजी ने पूछा—"हीरासिंह यह क्या बात है?"

हीरासिंह चुप रह गया

सेठजी ने कहा—"इसका पता लगाओ, हीरासिंह नहीं तो अच्छा न होगा।"

हीरासिंह सिर झुकाकर रह गया। पर कुछ ही देर में उसने सहसा चमत्कृत होकर पूछा—"रात गाय खुली तो नहीं रह गई थी? जरूर

यही बात है। आप इसकी खबर तो लीजिए।"

घोसी को बुलाकर पूछा गया तो उसने कहा कि ऐसी चूक कभी उससे जनम-जीते जी हो सकती हो नहीं है, और कल रात तो हुजूर, पक्के दावे के साथ गाय ठीक तरह से बँधी रही है।

हीरासिंह ने कहा—"ऐसा हो नहीं सकता—"

सेठजी ने कहा—"तो फिर तुम्हारी समझ में क्या हो सकता है।"

हीरासिंह ने स्थिर होकर कहा—"गाय रात को आकर ड्योढ़ी में खड़ी रही है और अपना दूध गिरा गई है।"

यह कहकर हीरासिंह इतना लीन हो रहा था कि मानो गौ के इस दुष्कृत पर अतिशय कृतज्ञता में डूब गया हो।

सेठजी ऐसी अनहोनी बात पर कुछ देर भी नहीं ठहरे। उन्होंने कहा—"ऐसी मनसुई बातें औरों से कहना। जाओ, खबर लगाओ कि वह कौन आदमी है, जिसकी यह करतूत है।"

हीरासिंह ड्योढ़ी में चला गया। ड्योढ़ी इस हवेली और उस दुनिया के दरमियान है और उसके लिए घर बनी हुई है। और क्षणेक फिर शून्य में देखते रहकर सिर झुकाकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

रात को जब वह सो रहा था, उसे मालूम हुआ कि दरवाजे पर कुछ रगड़ की आवाज़ आई। उठकर दरवाजा खोला कि देखता क्या हैं, सुन्दरिया खड़ी है। इस गौ के भीतर इन दिनों बहुत बिथा घुटकर रह गई थी। वह तकलीफ़ बाहर आना ही चाहती थी। हीरासिंह ने देखा—मुँह ऊपर उठाकर उसकी सुन्दरिया उसे अभियुक्ता की आँखों से देख रही है। मानो अत्यन्त लज्जित बनी क्षमा-याचना कर रही हो कहती हो—"मैं अपराधिनी हूँ। लेकिन मुझे क्षमा कर देना। मैं बड़ी दुखिया हूँ।"

हीरासिंह ने कहा—"बहिनी, यह तुमने क्या किया ?"

कैसा आश्चर्य ! देखता क्या है कि गौ मानव-वाणी में बोल रही है—'मैं क्या करूँ ?'

हीरासिंह ने कहा—"बहन, तुम बेवफाई क्यों करती हो ? सेठ को अपना दूध क्यों नहीं देती हो? बहिनी ! वह अब तुम्हारे मालिक हैं।" कहते-कहते हीरासिंह की वाणी कांप गई, मानो कहीं भीतर इस मालिक होने की बात के सच होने में उसको खुद शंका हो।

सुन्दरी ने पूछा—"मालिक ! मालिक क्या होता है ?"

हीरासिंह ने कहा—"तुम्हारी कीमत के रुपए सेठ ने मुझे दिये थे। ऐसे वह तुम्हारे मालिक हुए।"

गौ ने कहा—"ऐसे तुम्हारे यहाँ मालिक हुआ करते हैं। मैं इस बात को जानती नहीं हूँ। लेकिन तुम मुझे प्रेम करते हो, सो तुम मेरे क्या हो ?"

हीरासिंह ने धीर भाव से कहा—"मैं तुम्हारा कुछ भी नहीं हूँ।"

गौ बोली—"तुम मेरे कुछ भी नहीं हो, यह तुम कहते हो ? तुम झूठ भी नहीं कहते होगे। तुम जो जानते हो, वह मैं नहीं जानती। लेकिन मालिक की बात के साथ दूध देने की बात मुझसे तुम कैसी करते हो ? मालिक हैं, तो मैं उनके घर में उनके खूँटे से बँधी रहती तो हूँ। रात में भी चोरी करके आई हूँ। तो भी उनकी ड्योढ़ी से बाहर नहीं हूँ। पर दूध तो मेरे उतरता ही नहीं, उसका क्या करूँ ? मेरे भीतर का दूध मेरे पूरी तरह बस में नहीं है। कल रात आप-ही-आप इतना सारा दूध यहाँ बिखर गया। मैं यह सोचकर नहीं आई थी। हाँ, मुझे लगता है कि बिखरेगा तो वह यों ही बिखर जायगा। तुम ड्योढ़ी में रहोगे तो शायद ड्योढ़ी में बिखर जायगा। ड्योढ़ी से पार चले जाओगे तो शायद भीतर-ही-भीतर सूख जायगा। मैं जानती हूँ इससे तुम्हें दुःख पहुँचा है। मुझे भी दुःख पहुँचता है। शायद यह ठीक बात नहीं हो। मेरा यहाँ तक आ जाना भी ठीक बात नहीं हो। लेकिन जितना मेरा बस है, मैं कह चुकी हूँ। तुमने रुपए लिये हैं, और सेठ मेरे मालिक हैं, तो उनके घर में उनके खूँटे से मैं रह लूँगी। रह तो मैं रही ही हूँ, रुपए के लेन-देन से अधिकार का और

प्रेम का लेन-देन जिस भाव से तुम्हारी दुनिया में होता है, उसे मैं नहीं जानती। फिर भी तुम्हारी दुनिया में तुम्हारे नियम मानती जाऊँगी। लेकिन तुम अपने हृदय का इतना स्नेह देते हो, तब तुम मेरे कुछ भी नहीं हो और मैं अपने हृदय का दूध बिलकुल तुम्हारे प्रति नहीं बहा सकती—यह बात मैं किस बिध मान लूँ? मुझसे नहीं मानी जाती, सच, नहीं मानी जाती। फिर भी जो तुम कहोगे, वह मैं सब-कुछ मानूँगी।"

हीरासिंह ने विषाद-भरे स्वर में पूछा, "तो मैं तुम्हारा क्या हूँ?"

गौ ने कहा—"तो क्या मेरे कहने की बात है? फिर शब्द मैं विशेष नहीं जानती। दुःख है, वही मेरे पास है। उससे जो शब्द बन सकते हैं उन्हीं तक मेरी पहुँच है। आगे शब्दों में मेरी गति नहीं है, जो भाव मन में हैं, उनके लिए संज्ञा मेरे जुटाए जुटती नहीं। पशु जो मैं हूँ। संज्ञा तुम्हारे समाज की स्वीकृति के लिए जरूरी होती होगी, लेकिन, मैं तुम्हारे समाज की नहीं हूँ। मैं निरी गौ हूँ। तब मैं कह सकती हूँ कि तुम मेरे कोई हो, कोई न हो, दूध मेरा किसी और के प्रति नहीं बहेगा। इसमें मैं या तुम या कोई शायद कुछ भी नहीं कर सकेंगे। इस बात में मुझ पर मेरा भी बस कैसे चलेगा? तुम जानते तो हो, मैं कितनी परबस हूँ।"

हीरासिंह गौ के कण्ठ से लिपटकर सुबकने लगा। बोला—"सुन्दरिया, तो मैं क्या करूँ?"

गौ ने कंपित वाणी में कहा—"मैं क्या कहूँ? क्या कहूँ?"

हीरासिंह ने कहा—"जो कहो, मैं वही करूँगा सुन्दरी। रुपए का लेन-देन है, लेकिन, मेरी गौ, मैंने जान लिया कि उससे आगे भी कुछ है। शायद उससे आगे ही सब-कुछ है। जो कहो वही करूँगा, मेरी सुन्दरिया!"

गौ ने कहा—"जो तुमसे सुन रही हूँ, उससे आगे मेरी कुछ चाहना नहीं है। इतने में ही मेरी सारी कामनाएं भर गई हैं। आगे तो

तुम्हारी इच्छा है और मेरा तन है। मेरा विश्वास करो मैं कुछ नहीं माँगती और मैं सब सह लूँगी।"

सुनकर हीरासिंह बहुत विह्वल हो आया। उसके आँसू रोके न रुके। वह गर्दन से लिपटकर तरह-तरह के प्रेम-सम्बोधन करने लगा। उसके बाद हीरासिंह ने बहुत-से आश्वासन के वचनों के साथ गौ को विदा किया।

अगले दिन सवेरे उसने सेठजी से कहा, "आप मुझसे जितने महीने की चाहें कसकर चाकरी लीजिए, पर गौ आज ही यहाँ से हमारे गाँव चली जायगी। रुपए जब आपके चुकता हो जायं मुझसे कह दीजिएगा। तब मैं भी छुट्टी ले जाऊँगा।

सेठजी की पहले तो राजी होने की तबियत न हुई, फिर उन्होंने कहा—"हाँ, ले जाओ, ले जाओ। पूरा-पूरा ढाई सौ रुपए का तावान तुम्हें भरना पड़ेगा।"

हीरासिंह तावान भरने को खुशी से राजी हुआ और गौ को उसी रोज ले गया।

मुगलों ने सल्तनत बख्श दी

हीरोजी को आप नहीं जानते, और यह दुर्भाग्य की बात है। इसका यह अर्थ नहीं कि केवल आपका दुर्भाग्य है, दुर्भाग्य हीरोजी का भी है। कारण, वह बड़ा सीधा-सादा है। यदि आपका हीरोजी से परिचय हो जाय, तो आप निश्चय समझ लें कि आपका संसार के एक बहुत बड़े विद्वान् से परिचय हो गया। हीरोजी को जानने वालों में अधिकांश का मत है कि हीरोजी पहले जन्म में विक्रमादित्य के नव रत्नों में एक अवश्य रहे होंगे और अपने किसी पाप के कारण उनको इस जन्म में हीरोजी की योनि प्राप्त हुई। अगर हीरोजी का आपसे परिचय हो जाय, तो आप यह समझ लीजिए कि उन्हें एक मनुष्य अधिक मिल गया, जो उन्हें अपने शौक में प्रसन्नतापूर्वक एक हिस्सा दे सके।

हीरोजी ने दुनिया देखी है। यहाँ यह जान लेना ठीक होगा कि हीरोजी की दुनिया मौज और मस्ती की ही बनी है। शराबियों के साथ बैठकर उन्होंने शराब पीने की बाजी लगाई है और हरदम जीते हैं। अफीम के आदी नहीं हैं; पर अगर मिल जाय तो इतनी खा लेते हैं, जितनी से एक खानदान का खानदान स्वर्ग की या नरक की यात्रा कर सके। भंग पीते हैं तब तक जब तक उनका पेट न भर जाय। चरस और गाँजे के लोभ में साधु बनते-बनते बच गए। एक बार एक

आदमी ने उन्हें संखिया खिला दिया था, इस आशा से कि संसार एक पापी के भार से मुक्त हो जाय; पर दूसरे ही दिन हीरोजी उसके यहाँ पहुँचे। हँसते हुए उन्होंने कहा—"यार कल का नशा, नशा था। राम दुहाई, अगर आज भी वह नशा करवा देते, तो तुम्हें आशीर्वाद देता। लेकिन उस आदमी के पास संखिया मौजूद न था।"

हीरोजी के दर्शन प्रायः चाय की दुकान पर हुआ करते हैं। जो पहुँचता है, वह हीरोजी को एक प्याला चाय का अवश्य पिलाता है। उस दिन जब हम लोग चाय पीने पहुँचे, तो हीरोजी एक कोने में आँखें बन्द किये हुए बैठे कुछ सोच रहे थे। हम लोगों में बातें शुरू हो गईं, और हरिजन-आन्दोलन से घूमते-फिरते बात आ पहुँची दानवराज बलि पर। पण्डित गोवर्धन शास्त्री ने आमलेट का टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहा—"भाई, यह तो कलियुग है। न किसी में दीन है, न ईमान। कौड़ी-कौड़ी पर लोग बेईमानी करने लग गए हैं। अरे, अब तो लिखकर भी लोग मुकर जाते हैं। एक युग था, जब दानव तक अपने वचन निभाते थे, सुरों और नरों की बात ही छोड़ दीजिए। दानवराज बलि ने वचनबद्ध होकर सारी पृथ्वी दान कर दी थी। पृथ्वी ही काहे को, स्वयं अपने को भी दान कर दिया था।"

हीरोजी चौंक उठे। खाँसकर उन्होंने कहा—"क्या बात है? जरा फिर से तो कहना।"

सब लोग हीरोजी की ओर घूम पड़े। कोई नई बात सुनने को मिलेगी, इस आशा से मनोहर ने शास्त्री जी के शब्दों को दुहराने का कष्ट उठाया—"हीरोजी! ये गोवर्धन शास्त्री जी हैं, सो कह रहे हैं कि कलियुग में धर्म-कर्म सब लोप हो गया। त्रेता में तो दैत्यराज बलि तक ने अपना सब-कुछ केवल वचनबद्ध होकर दान कर दिया था।"

हीरोजी हँस पड़े—"हाँ, तो यह गोवर्धन शास्त्री कहने वाले हुए और तुम लोग सुनने वाले, ठीक ही है। लेकिन हमसे सुनो, यह तो कह रहे हैं त्रेता की बात, अरे तब तो अकेले बलि ने ऐसा कर दिया

दिया था; लेकिन मैं कहता हूँ कलियुग की बात। कलियुग में तो एक आदमी की कही हुई बात को उसकी सात-आठ पीढ़ी तक निभाती गई और यद्यपि यह पीढ़ी स्वयं नष्ट हो गई, लेकिन उसने अपना वचन नहीं तोड़ा।"

हम लोग आश्चर्य में आ गए। हीरोजी की बात समझ में नहीं आई, पूछना पड़ा—"हीरोजी, कलियुग में किसने इस प्रकार अपने वचनों का पालन किया?"

"लौंडे हो न!" हीरोजी ने मुँह बनाते हुए कहा—"जानते हो मुगलों की सल्तनत कैसे गई?"

"हाँ! अँगरेजों ने उनसे छीन ली।"

"तभी तो कहता हूँ कि तुम सब लोग लौंडे हो। स्कूली किताबों को रट-रट कर बन गए पढ़े-लिखे आदमी। अरे, मुगलों ने अपनी सल्तनत अँगरेजों को बख्श दी।"

हीरोजी ने यह कौन-सा नया इतिहास बनाया? आँखें कुछ अधिक खुल गईं। कान खड़े हो गए। मैंने कहा—"सो कैसे?"

"अच्छा तो फिर सुनो—"हीरोजी ने आरम्भ किया—"जानते हो, शाहंशाह शाहजहाँ की लड़की शाहजादी रोशनआरा एक दफा बीमार पड़ी थी और उसे एक अँगरेज डॉक्टर ने अच्छा किया था। उस डॉक्टर को शाहंशाह शाहजहाँ ने हिन्दुस्तान में तिजारत करने के लिए कलकत्ते में कोठी बनाने की इजाजत दे दी थी।"

"हाँ, यह तो हम लोगों ने पढ़ा है।"

"लेकिन असल बात यह है कि शाहजादी रोशनआरा—वही शाहंशाह शाहजहाँ की एक लड़की—हाँ, वही शाहजादी रोशनआरा एक दफा जल गई। अधिक नहीं जली थी। अरे हाथ थोड़ा-सा जल गया था, लेकिन जल तो गई थी और थी शाहजादी। बड़े-बड़े हकीम और वैद्य बुलाये गए। इलाज किया गया; लेकिन शाहजादी को कोई अच्छा न कर सका और शाहजादी को भला अच्छा कौन कर

सकता था ? वह शाहजादी थी न, सब लोग लगाते थे लेप और लेप लगाने से होती थी जलन और तुरन्त शाहजादी ने धुलवा डाला उस लेप को। भला शाहजादी को रोकने वाला कौन था। अब शाहंशाह सलामत को फिक्र हुई। लेकिन शाहजादी अच्छी हो तो कैसे ? वहाँ तो दवा असर करने ही न पाती थी।

"उन्हीं दिनों एक अँगरेज घूमता-घामता दिल्ली आया। दुनिया देखे हुए, घाट-घाट का पानी पिये हुए, पूरा चालाक और मक्कार ! उसको शाहजादी की बीमारी की खबर लग गई। नौकरों को घूस देकर उसने पूरा हाल दरियाफ्त किया। उसे मालूम हो गया कि शाहजादी जलन की वजह से दवा धुलवा डाला करती है। सीधे शाहंशाह सलामत के पास पहुँचा। कहा कि डॉक्टर हूँ। शाहजादी का इलाज उसने अपने हाथ में ले लिया। उसने शाहजादी के हाथ में एक दवा लगाई। उस दवा से जलन होना तो दूर रहा, उलटे जले हुए हाथ में ठण्डक पहुँची। अब भला शाहजादी उस दवा को क्यों धुलवाती ! हाथ अच्छा हो गया। जानते हो वह दवा क्या थी ?" हम लोगों की ओर भेद-भरी दृष्टि डालते हुए हीरोजी ने पूछा।

"भाई, हम दवा क्या जानें ?" कृष्णानन्द ने कहा।

"तभी तो कहते हैं कि इतना पढ़-लिखकर भी तुम्हें तमीज न आई। अरे वह दवा थी वेसलीन—वही वेसलीन, जिसका आज घर-घर में प्रचार है।"

"वेसलीन ! लेकिन वेसलीन तो दवा नहीं होती।"—मनोहर ने कहा।

"कौन कहता है कि वेसलीन दवा होती है। अरे उसने हाथ में लगा दी वेसलीन और घाव आप-ही-आप अच्छा हो गया। वह अँगरेज बन बैठा डॉक्टर—और उसका नाम हो गया। शाहंशाह शहाजहाँ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस फिरङ्गी डॉक्टर से कहा—'माँगो।' उस फिरङ्गी ने कहा—'हुजूर ! मैं इस दवा को हिन्दुस्तान में रायज करना चाहता हूँ,

इसलिए हुजूर मुझे हिन्दुस्तान में तिजारत करने की इजाजत दे दें'— बादशाह सलामत ने जब यह सुना कि डॉक्टर हिन्दुस्तान में इस दवा का प्रचार करना चाहता है, तो बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा— 'मंजूर ! और कुछ माँगो।' तब उस चालाक डॉक्टर ने जानते हो क्या माँगा ? उसने कहा—'हुजूर ! मैं एक तम्बू तानना चाहता हूँ, जिसके नीचे इस दवा के पीपे इकट्ठे किये जायंगे। जहाँपनाह यह फरमा दें कि उस तम्बू के नीचे जितनी जमीन आयगी, वह जहाँपनाह ने फिरंगियों को बख्श दी।' शाहंशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, उन्होंने सोचा, तम्बू के नीचे भला कितनी जगह आयेगी ! उन्होंने कह दिया —'मंजूर।'

"हाँ, तो शाहंशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, छल-कपट उन्हें आता न था। और वह अँगरेज़ था दुनिया देखे हुए। सात समुद्र पार करके हिन्दुस्तान आया था न ! पहुँचा विलायत, वहाँ उसने बनवाया रबड़ का एक बहुत बड़ा तम्बू और जहाज पर तम्बू लदवाकर चल दिया हिन्दुस्तान। कलकत्ते में उसने वह तम्बू लगवा दिया। वह तम्बू कितना ऊँचा था, इसका अन्दाजा आप नहीं लगा सकते। उस तम्बू का रङ्ग नीला था। तो जनाब वह तम्बू लगा कलकत्ते में और विलायत से पीपे-पर-पीपे लद-लदकर आने लगे। उन पीपों में वेसलीन की जगह भरा था एक-एक अंग्रेज़ जवान मय बन्दूक और तलवार के। सब पीपे तम्बू के नीचे रखवा दिये गए। जैसे-जैसे पीपे जमीन घेरने लगे, वैसे-वैसे तम्बू को बढ़ा-बढ़ाकर जमीन घेर दी गई। तम्बू तो रबड़ का था न, जितना बढ़ाया, बढ़ गया। अब जनाब तम्बू पहुँचा पलासी। तुम लोगों ने पढ़ा होगा कि पलासी का युद्ध हुआ था। अरे सब झूठ है। असल में तम्बू बढ़ते-बढ़ते पलासी पहुँचा था, और उस वक्त मुगल बादशाह का हरकारा दौड़ा था दिल्ली। बस यह कह दिया गया कि पलासी की लड़ाई हुई। जी हाँ, उस वक्त दिल्ली में शाहंशाह शाहजहाँ की तीसरी या चौथी पीढ़ी सल्तनत कर रही थी। हर-

कारा जब दिल्ली पहुँचा, उस वक्त बादशाह सलामत की सवारी निकल रही थी। हरकारा घबराया हुआ था। वह इन फिरङ्गियों की चालों से हैरान था। उसने मौका देखा न महल, वहीं सड़क पर खड़े होकर उसने चिल्लाकर कहा—'जहाँपनाह गज़ब हो गया। ये बदतमीज फिरङ्गी अपना तम्बू पलासी तक खींच लाए हैं, और चूँकि कलकत्ते से पलासी तक की ज़मीन तम्बू के नीचे आ गई है, इसलिए इन फिरङ्गियों ने उस ज़मीन पर कब्जा कर लिया है। जो इनको मना किया तो इन बदतमीजों ने शाही फरमान दिखा दिया।' बादशाह सलामत की सवारी रुक गई थी। उन्हें बुरा लगा, उन्होंने हरकारे से कहा—'म्याँ हरकारे, मैं कर ही क्या सकता हूँ। जहाँ तक फिरङ्गियों का तम्बू घिर जाय, वहाँ तक की जगह उनकी हो गई, हमारे बुजुर्ग कह गए हैं।' बेचारा हरकारा अपना-सा मुँह लेकर वापस गया।

"हरकारा लौटा और इन फिरङ्गियों का तम्बू बढ़ा। अभी तक तो आते थे पीपों में आदमी, अब आने लगा तरह-तरह का सामान। हिन्दुस्तान का व्यापार फिरङ्गियों ने अपने हाथ में ले लिया। तम्बू बढ़ता ही रहा और पहुँच गया बक्सर। इधर तम्बू बढ़ा और उधर लोगों की घबराहट बढ़ी। यह जो किताबों में लिखा है कि बक्सर की लड़ाई हुई, यह गलत है। भाई, जब तम्बू बक्सर पहुँचा, तो हरकारा दौड़ा।

"अब जरा बादशाह सलामत की बात सुनिए। वह जनाब दीवान खास में तशरीफ रख रहे थे। उनके सामने सैंकड़ों, बल्कि हज़ारों मुसाहब बैठे थे। बादशाह सलामत हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे—सामने एक साहब, जो शायद शायर थे, कुछ गा-गाकर पढ़ रहे थे और कुछ मुसाहब गला फाड़-फाड़कर 'वाह, वाह' चिल्ला रहे थे। कुछ लोग तीतर और बटेर लड़ा रहे थे। हरकारा जो पहुँचा तो यह सब बंद हो गया। बादशाह सलामत ने पूछा—'म्याँ हरकारे क्या हुआ—इतने घबराये हुए क्यों?' हाँफते हुए हरकारे ने कहा—'जहाँपना इन बदजात फिर-

ङ्गियों ने अन्धेर मचा रखा है। वह अपना तम्बू बक्सर खींच लाए।'
बादशाह सलामत को बड़ा ताज्जुब हुआ। उन्होंने अपने मुसाहबों से पूछा—'म्याँ हरकारा कहता है कि फिरङ्गी अपना तम्बू कलकत्ते से बक्सर तक खींच लाए। यह कैसे मुमकिन है?' इस पर एक मुसाहब ने कहा—'जहाँपनाह ये फिरङ्गी जादू जानते हैं, जादू!' दूसरे ने कहा—'जहाँपनाह इन फिरङ्गियों ने जिन्नात पाल रखे हैं—जिन्नात सब-कुछ कर सकते हैं।' बादशाह सलामत की समझ में कुछ आया नहीं। उन्होंने हरकारे से कहा—'म्याँ हरकारे, तुम बतलाओ यह तम्बू किस तरह बढ़ आया?' हरकारे ने समझाया कि तम्बू रबड़ का है। इस पर बादशाह सलामत बड़े खुश हुए। उन्होंने कहा—'ये फिरङ्गी भी बड़े चालाक हैं, बड़े अकल के पुतले हैं।' इस पर सब मुसाहबों ने एक स्वर में कहा—'इसमें क्या शक है, जहाँपनाह बजा फरमाते हैं।' बादशाह सलामत मुसकराए—'अरे भाई किसी चोबदर को भेजो, जो इन फिरङ्गियों के सरदार को बुला लावे, मैं ख़िलअत दूँगा।' सब मुसाहब कह उठे—'वल्लाह! जहाँपनाह एक ही दरयादिल हैं। इस फिरङ्गी सरदार को जरूर खिलअत देनी चाहिए।' हरकारा घबराया वह आया था शिकायत करने, वहाँ बादशाह सलामत फिरङ्गी सरदार को खिलअत देने पर आमादा थे। वह चिल्ला उठा—'जहाँपनाह! इन फिरङ्गियों ने जहाँपनाह की सल्तनत का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने तम्बू के नीचे करके उस पर कब्जा कर लिया है। जहाँपनाह! ये फिरङ्गी जहाँपनाह की सल्तनत छीनने पर आमादा दिखलाई देते हैं।' मुसाहब चिल्ला उठे—'ऐं, ऐसा गज़ब!' बादशाह सलामत की मुसकराहट गायब हो गई। थोड़ी देर सोचकर उन्होंने कहा—'मैं क्या कर सकता हूँ? हमारे बुजुर्ग इन फिरङ्गियों को उतनी जगह दे गए हैं, जितनी तम्बू के नीचे आ सके। भला मैं उसमें कर ही क्या सकता हूँ? हाँ फिरङ्गी सरदार को खिलअत न दूँगा।' इतना कहकर बादशाह सलामत फिरङ्गियों की

चालाकी अपनी बेगमात से बतलाने के लिए हरम के अन्दर चले गए। हरकारा बेचारा लौट आया।

"जनाब उस तम्बू ने बढ़ना जारी रखा। एक दिन क्या देखते हैं कि विश्वनाथपुरी काशी के ऊपर वह तम्बू तन गया। अब तो लोगों में भगदड़ मच गई। उन दिनों राजा चेतसिंह बनारस की देख-भाल करते थे। उन्होंने उसी वक्त बादशाह सलामत के पास हरकारा दौड़ाया। वह दीवान-खास में हाजिर किया गया। हरकारे ने बादशाह सलामत से अर्ज की कि वह तम्बू बनारस पहुँच गया है और तेजी के साथ दिल्ली की तरफ आ रहा है। बादशाह सलामत चौंक उठे। उन्होंने हरकारे से कहा—'तो म्याँ हरकारे, तुम्हीं बताओ, क्या किया जाय?' वहाँ बैठे हुए दो-एक उमराओं ने कहा—'जहाँपनाह, एक बहुत बड़ी फ़ौज भेजकर इन फिरङ्गियों का तम्बू छोटा करवा दिया जाय और कलकत्ते भेज दिया जाय। हम लोग जाकर लड़ने को तैयार हैं। जहाँपनाह, का हुक्म-भर हो जाय। इस तम्बू की क्या हकीकत है, एक मर्तबा आसमान को भी छोटा कर दें।' बादशाह सलामत ने कुछ सोचा, फिर उन्होंने कहा—'क्या बताऊँ, हमारे बुजुर्ग शाहंशाह शाहजहाँ इन फिरङ्गियों को तम्बू के नीचे जितनी जगह आ जाय, वह बख्श गए हैं। बख्शीशनामे की रूह से हम लोग कुछ नहीं कर सकते। आप जानते हैं, हम लोग अमीर तैमूर की औलाद हैं। एक दफा जो जबान दे दी वह तो पूरा होगी ही। तम्बू को छोटा कराना तो ग़ैर-मुमकिन है। हाँ, कोई ऐसी हिकमत निकाली जाय, जिससे ये फिरङ्गी अपना तम्बू आगे न बढ़ा सकें। इसके लिए दरबार आम किया जाय और यह मसला वहाँ पेश हो।'

"इधर दिल्ली में तो यह बातचीत हो रही थी और उधर इन फिरंगियों का तम्बू इलाहाबाद और इटावा को ढकता हुआ आगरा पहुँचा। दूसरा हरकारा दौड़ा। उसने कहा—'जहाँपनाह, वह तम्बू आगरे तक बढ़ आया है। अगर अब भी कुछ नहीं किया जाता, तो ये फिरंगी दिल्ली पर भी अपना तम्बू तानकर कब्जा कर लेंगे।' बादशाह सलामत घबराये—

दरबार आम किया गया। सब अमीर-उमरा इकट्ठे हो गए, तो बादशाह सलामत ने कहा—'आज हमारे सामने एक अहम मसला पेश है। आप लोग जानते हैं कि हमारे बुजुर्ग शाहंशाह शाहजहाँ ने फिरंगियों को इतनी जमीन बख्श दी थी, जितनी उनके तम्बू के नीचे आ सके। इन्होंने अपना तम्बू कलकत्ते में लगवाया था, लेकिन वह तम्बू है रबड़ का, और धीरे-धीरे ये लोग तम्बू आगरे तक खींच लाए। हमारे बुजुर्गों से जब यह कहा गया, तब उन्होंने कुछ करना मुनासिब न समझा, क्योंकि शाहंशाह शाहजहाँ अपना कौल हार चुके हैं। हम लोग अमीर तैमूर की औलाद हैं और अपने कौल के पक्के हैं। अब आप लोग बतलाइए, क्या किया जाय?' अमीरों और मनसबदारों ने कहा—'हमें इन फिरंगियों से लड़ना चाहिए और इनको सजा देनी चाहिए। इनका तम्बू छोटा करवाकर कलकत्ते भिजवा देना चाहिए।' बादशाह सलामत ने कहा—'लेकिन हम अमीर तैमूर की औलाद हैं। हमारा कौल टूटता है।' इसी समय तीसरा हरकारा हाँफता हुआ बिना इत्तला कराये ही दरबार में घुस आया। उसने कहा—'जहाँपनाह वह तम्बू दिल्ली पहुँच गया। वह देखिए, किले तक आ पहुँचा।' सब लोगों ने देखा। वास्तव में हजारों गोरे खाकी वर्दी पहने और हथियारों से लैस, बाजा बजाते हुए तम्बू को किले की तरफ खींचते हुए आ रहे थे। उस वक्त बादशाह सलामत उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—'हमने तै कर लिया। हम अमीर तैमूर की औलाद हैं। हमारे बुजुर्गों ने जो कुछ कह दिया, वही होगा। उन्होंने तम्बू के नीचे की जगह फिरंगियों को बख्श दी थी। अब अगर दिल्ली भी उस तम्बू के नीचे आ रही है, तो आये। मुगल सल्तनत जाती है, तो जाय, लेकिन दुनिया यह देख ले कि अमीर तैमूर की औलाद हमेशा अपने कौल की पक्की रही है।' इतना कहकर बादशाह सलामत अपने अमीर-उमराओं के साथ दिल्ली के बाहर हो गए और दिल्ली पर अँगरेजों का कब्जा हो गया। अब आप लोग देख सकते हैं, इस कलियुग में भी मुगलों ने अपनी सल्तनत बख्श दी।"

हम सब लोग थोड़ी देर तक चुप रहे। इसके बाद मैंने कहा—"हीरोजी, एक प्याला चाय और पियो।"

हीरोजी बोल उठे—"इतनी अच्छी कहानी सुनाने के बाद भी एक प्याला चाय? अरे महुवे के ठर्रे का एक अद्धा तो हो जाता।"

९ : : श्री श्रीराम शर्मा

नायक का चुनाव

मानव-जीवन में कृत्रिमता जहाँ एक आवश्यक अंग-सी बन गई है वहाँ वह एक अभिशाप भी है। प्राकृतिक जीवन से दूर होकर मनुष्य उच्च स्तर की बातें करता है। शिक्षा, दर्शन और नैतिकता पर वह बड़े-बड़े पोथे लिखता है, विज्ञान की दुहाई देता है; पर अधिकांश में वह सरलता, सचाई और नैसर्गिकता से दूर हटता जाता है। यों अपवाद स्वरूप गांधी, ईसा, बुद्ध, मुहम्मद तथा अन्य व्यक्ति इस दुनिया को कायम रखते हैं। पर सभ्यता की दुनिया से दूर प्रकृति की गोद में पले मानव स्नेह, निष्ठा, तथा कर्तव्य-पालन में किसी से कम नहीं हैं। स्वास्थ्य और शौर्य में तो वे अद्भुत होते हैं। छल-छिद्र उन्हें नहीं भाता। सरलता के तो वे एक प्रकार से अवतार हैं, और होते हैं बात पर मिटने वाले।

❀ ❀ ❀

फ्रांसीसी अफ्रीका के एक गाँव में, जो चारों ओर से वन-वृक्षों से आच्छादित था एक दिन, वहाँ के नायक का देहान्त हो गया। उसका उत्तराधिकारी चुनने के लिए फ्रांसीसी अफसर की अनुमति की जरूरत थी। गाँव के सयाने ने आकर टोटिका टमना किया। स्त्रियों के करुण-क्रंदन से पेड़ थर्रा-से गए। नायक के एक-मात्र लड़के सूतो की ओर सबकी नज़र थी कि वह अपनी जाति का नायक बनाया जायगा।

पर सूतो को यह आशंका थी कि कहीं उसका प्रतिद्वन्द्वी बनक उसके पिता का उत्तराधिकारी न बना दिया जाय। कारण यह था कि शिकार में सूतो का एक हाथ बेकार-सा हो गया था। पूरे तौर से वह उसका उपयोग नहीं कर सकता था और बनक बड़ा ही वाचाल था। फ्रांसीसी अफसरों की खुशामद में भी वह बहुत रहता था। वह स्वस्थ भी था। उसके हाथों में किसी प्रकार की बीमारी भी नहीं थी। चाटुकारी और चातुर्य में उसकी जीभ कतरनी-सी चलती थी। चालाक भी वह एक नम्बर का था। सूतो के पिता की मृत्यु का समाचार पाकर मातम-पुरसी करने आने के पूर्व वह सीधा फ्रांसीसी अफसरों के पास चला भी गया था। यों सूतो की प्रतिष्ठा काफी थी। स्वभाव उसका सरल था। शौर्य उसका अपार था, और था व्यवहार में वह विनम्र। लोगों की नजर भी उसकी ओर थी। अन्य लोगों के अतिरिक्त एक युवती भी थी जो अपना दिल सूतो को दे चुकी थी। सूतो की मनोव्यथा जानकर उसने कहा, "तुमसे अधिक और वीर यहाँ कौन है? जाति के नायक तुम्हीं बनोगे और मैं तुम्हारी पत्नी बनूँगी।"

"चुप रहो, बकवास करने की जरूरत नहीं है। पता नहीं भगवान् क्या करता है। मैं पिता की मृत्यु से क्षुब्ध हूँ। कहाँ उनका ज़माना, कहाँ मेरी अल्प शक्ति और अल्प बुद्धि।"

उस युवती का नाम था लिरीना। सूतो ने उपर्युक्त शब्द कहकर जैसे ही अपनी नज़र अपने मकान के दूसरी ओर को की, वैसे ही सामने उसे बनक नज़र आया और उसने व्यंग से कहा, "सूतो, मैंने तुम्हारी बात सुन ली है। और तुम इतने बेहूदा हो कि नायक के मरने पर तुम रंज नहीं मना रहे हो। नायक को तो लोगों की मातम-पुरसी में ही मरना चाहिए।"

"तू तो दोगला है और तू क्या जाने कि नायक का खून कैसा होता है और उसे कैसे मरना चाहिए।" व्यंग से सूतो उबला।

विष से बुझे सूतो के व्यंग से बनक तिलमिला गया। क्रोध से

उसका चेहरा लाल हो गया और कमर से लटकते खंजर पर उसका हाथ पहुँच गया। बिगड़कर बनक ने कहा, "मुझमें भी नायक का खून है। तू कहे तो मैं यहीं यह साबित करूँ ?"

सूतो कुछ क्षणों के लिए चुप रहा और उसने देखा कि वहाँ पर उपस्थित योद्धाओं में कानाफूँसी होने लगी। सूतो ने कहा, "वह दिन भी आ जायगा बनक। थोड़ा धैर्य रख।"

बनक ने उपहास की हँसी हँसी और अपनी शक्ति तथा यौवन के कारण उसने सूतो की उपेक्षा की! खंजर से उसने अपना हाथ हटा लिया और अकड़ता हुआ वह वहाँ जा बैठा जहाँ अन्य योद्धा बैठे थे। अपनी मौखिक जीत पर उसे गर्व था। तेल से चुपड़े उसके सुगठित शरीर पर सूर्य के प्रकाश से ऐसा प्रतीत होता था मानो सुगठित आबनूस की वह प्रस्तर मूर्ति हो। वहाँ बैठकर उसने कहा, "अंग-भंग व्यक्ति ही आधे पद्धे शब्द कहते हैं।"

इस बीच स्त्रियों और आदमियों में बातें होती रहीं। मातम-पुरसी भी जाती रही। उत्तराधिकारित्व के विषय में भी लोगों में चर्चा होती रही और दो-तीन दिनों बाद दो फ्रांसीसी अफसर दो हब्शी सैनिकों के साथ आ गए। उनमें से बड़े अफसर को सूतो ने पहचान लिया क्योंकि उसके बचपन में उसने उसके पिता को अधिकार दिया था।

छोटे फ्रांसीसी अफ़सर ने बड़े अफ़सर कमिश्नर से सूतो का परिचय कराया। कमिश्नर ने सूतो को ऊपर से नीचे तक देखा और उसकी पंगु-भुजा पर उसकी निगाह टिक गई और उसने देखा कि सूतो की वह भुजा इतनी बलिष्ठ नहीं है जितनी कि दूसरी। कमिश्नर ने सूतो से कहा, "तुम्हारा पिता एक महान् योद्धा था और उसने बड़ी बुद्धिमत्ता से शासन किया।"

कमिश्नर ने आज्ञा दी कि चूँकि चेचक संक्रामक रोग है इसलिए सब मकानों को जला देना चाहिए ताकि छूत का रोग शेष न रह जाय नहीं तो वह और लोगों को भी ले बैठेगा। सूतो ने तेज़ दराँती उठाई

और अपने फूस के मकान की लकड़ियों के बंधन काटने शुरू किये।

पूर्णिमा की चंद्रिका छिटक रही थी और आस-पास के विशाल वृक्षों में चंद्रमा आँख-मिचौनी-सी खेल रहा था। एक चौड़े मैदान में नृत्य हो रहा था। स्थानीय शराब के दौर चल रहे थे और लोग इस बात के इच्छुक थे कि नायक के निर्णय की बात कब शुरू होती है।

सूतो सगर्व अफ़सरों के सामने उकडूँ बैठा था। प्रार्थी की हैसियत से वह एक लंगोटी पहने था। बनक भी उसकी बगल में बैठा था। देखने में वह सूतो से बड़ा था। उसके सफेद दाँतों से उसकी मुस्कराहट प्रस्फुटित हो रही थी।

धौंसे पर चोट पड़ी और सब नाचने वाले एकदम एक-एक कर जमीन पर बैठ गए। एक शराब का दौर और चला और तब फ्रांसीसी कमिश्नर ने बात शुरू की। कमिश्नर ने कहा, "अब नायक के बारे में चर्चा करनी है। दो उम्मीदवार हैं और दोनों उम्मेदवारों की बात सुन-कर फैसला देना है। बनक, अब तुम पहले बात कहो।"

सुगठित और पुट्ठेदार शरीर एकदम खड़ा हुआ और बनक ने कहा, "नायक होने का मैं अधिकारी हूँ और मुझे ही नायक होना चाहिए, क्योंकि मैं एक महान् योद्धा हूँ। खंजर अथवा भाला चलाने में मुझसे बढ़कर कोई नहीं है। मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। मैं बुद्धि-मत्ता से शासन करूँगा, क्योंकि मुझमें नायक का खून है। फ्रांसीसी सरकार का मैं सेवक भी हूँ। अफ़सर मुझे जानते हैं क्योंकि मैंने उनकी सेवा भी की है।"

तब फ्रांसीसी अफ़सर ने सूतो से संकेत किया कि वह अपनी बात कहे।

सूतो धीरे से खड़ा हुआ। वह अपनी भुजा की कमजोरी जानता था। उसकी टाँगों में कम्पन हुआ और तब उसने कहा, "मुझे नायक होना चाहिए क्योंकि मैं नायक का पुत्र हूँ। मैं जानता हूँ कि शांति-व्यवस्था कैसे, की जाती है। बचपन में मैंने एक सिंह मारा था और

पिछले दिनों बिना हथियार के एक बघेरा मारा था। मेरी इच्छा बुद्धि-मत्ता से शासन करने की है।"

सूतो को ऐसा महसूस हुआ कि उसकी बात का असर लोगों पर नहीं पड़ा। उसे अपनी हार-सी प्रतीत हुई। पर उसने अपनी भावना को प्रकट नहीं होने दिया।

फ्रांसीसी कमिश्नर ने लोगों से पूछा, "पंचायतों और सभाओं में कौन बोलता है ?"

एक योद्धा ने कहा, "बनक, और उसे ही नायक होना चाहिए क्योंकि उसकी बातों में सचाई है।"

"नहीं, सूतो एक महान् नायक का पुत्र है और मैं चाहता हूँ उसे ही अपने पिता का उत्तराधिकारी बनाया जाय।" एक योद्धा ने बात काटकर कहा।

और भी कई योद्धा इस विषय में बोले।

कायदा यह था कि जो नायक बनाया जाता था उसको एक अधि-कार की हड्डी दी जाती थी। वह हड्डी बघेरे की होती थी। निर्मल चाँदनी में लोगों की भीड़ के बीच में बघेरे की खाल पर रखी वह चमक रही थी और लोगों को पता न था कि वह सूतो को दी जायगी या बनक को।

फ्रांसीसी अफ़सर ने कहा, "और किसी को तो कुछ नहीं कहना है ?"

बनक ने उच्च स्वर से कहा, "सूतो तो आधा ही आदमी है और अधिकार-हड्डी पाने के वह योग्य नहीं है। मैं अपना एक हाथ अपनी बगल से बाँध लूँगा और उसके साथ एक ही हाथ से खंजर से लड़ने को तैयार हूँ।"

क्रोध से सूतो भन्ना गया। उछलकर खड़े होकर उसने नीचे की ओर देखा और बनक से कहा, "अबे सूअर ! तेरी बात मैं सुन रहा हूँ। तू अपने दोनों हाथ खुले रख और मुझसे लड़ और मुझे देखना है तू कैसे जीतता है ?"

अन्य योद्धाओं और भीड़ में उत्तेजना-सी फैली और लोगों को

खुशी हुई कि इस प्रकार के निर्णय से उनकी परम्परा कायम रहेगी।

फ्रांसीसी कमिश्नर ने दोनों सैनिकों को पास बुलाकर खड़ा किया और लोगों से कहा, "नहीं, लड़ाई नहीं होगी। इस तरह खून-खराबी करना ठीक नहीं है। सूतो और बनक दोनों ने ही बहुत साफ बातें कही हैं। परन्तु कोरी बातों से काम नहीं चलता और न केवल भाषण देने से ही कोई नायक बन सकता है। करनी करने से किसी भाषण की आवश्यकता न होगी। ये दोनों खंजर और भाला लेकर जंगल को जायंगे और अपनी वीरता का प्रमाण देंगे और कल शाम को चन्द्रमा के उगने पर वापस आयंगे और अपने शौर्य का प्रमाण देंगे तभी यह निर्णय दे दिया जायगा कि कौन नायक होता है?" दोनों फ्रांसीसी अफसर अपने कैम्प में चले गए और उनके चले जाने के बाद शराब का एक दौर और चला।

बनक ने सूतो से कहा, "इस झंझट में क्यों पड़ता है? तू मुझसे जीतेगा नहीं। इसलिए कह दे कि तू मेरा प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।"

"हाँ, चाटुकारी और शेखीखोरी में तो नहीं हूँ"—यह कहता हुआ सूतो अपने मकान की ओर चला गया।

सूतो ने आदमियों का कुछ खयाल नहीं किया। उसका दिमाग बड़ी तेज़ी से काम कर रहा था। एक प्रकार से उसका एक ही हाथ था और बनक के दोनों हाथ उतने ही तेज़ थे जितनी उसकी जबान। इसलिए उसकी शौर्य-योजना निर्दोष होनी चाहिए। अपने मकान के भीतर वह घुसा और खूँटियों पर टँगे अपने हथियार—भाले, खंजर, और तीर कमान देखे। वह जानता था कि उसके मकान से पूर्व की ओर को शक्तिशाली सिंह रहते हैं जिनकी गति विद्युत् के समान थी। आदमी उस तरफ़ कभी जाते न थे पर आज तो उसको उस ओर जाना ही था; क्योंकि अगर वह किसी सिंह को मार सका और उसकी खाल ला सका तो वह नायक के पद का अधिकारी हो सकेगा। उसे अपने पीछे कुछ आहट-सी मालूम हुई और मुड़कर जो देखा तो पीछे दरवाजे में

लिरीना खड़ी थी। उसकी आँखें फटी हुई-सी थीं। मुस्कान के स्थान में उसके चेहरे पर गाम्भीर्य था। उसने हाथ बढ़ाकर एक पतली जंजीर में बँधा एक क्रास उसकी ओर बढ़ाया और कहा, "इसे पहन लो, यह बड़ा ही शुभ है।"

सूतो मुस्कराया और युवती लिरीना की सरलता से वह बड़ा प्रभावित हुआ। उसने सोचा कि उसका जादू तो खंजर की धार है जो दीवार पर लटक रही है। वैसे उसकी कमर में एक जादू का ताबीज़ बँधा हुआ था। सूतो ने कहा, "तुम्हारी इस कृपा के लिए धन्यवाद। मुझे इस कृपा की आवश्यकता नहीं है।"

वह कुछ रुआसी-सी हुई और उसने पूछा, "जा कहाँ रहे हो?"

अपने भाले और खंजर को उतारने को हाथ ऊपर करते हुए सूतो ने रुखाई से कहा, "सिंहों के शिकार के लिए, बस मेरे लिए जीवन का यही एक अवसर है।"

अपने हाथ से अपने होठों को छिपाते हुए चिन्ता से लिरीना ने कहा, "नहीं, ऐसा करना तो मौत के मुँह में जाना है, क्योंकि वहाँ तो टोलियों में जाकर शिकार खेला जाता है। अकेला आदमी तो सिंहों का शिकार नहीं खेलता।"

अविचलित भाव और कड़ाई से सूतो ने कहा, "मैं जाता हूँ और इस प्रकार की बात मैं नहीं सुनना चाहता।"

कमर में खंजर बाँधकर और भाले को जमीन पर घसीटते हुए तथा सीधे हाथ में शिकारी चाकू लेकर वह लिरीना की ओर मुड़ा और उससे कहा, "मेरे ऊपर विश्वास रखो।"

और वह उसकी बगल से एक ओर निकल गया मानो वह रात्रि में प्रवेश कर गया हो। जाते में उसने बनक को देखा। वह पहले से ही सुसज्जित था और शिकार को जाने को तैयार था। नक्र-नृत्य करते हुए वह बड़ी शान से कह रहा था कि वह नदी से विशालकाय सबसे बड़े मगर को मारकर लायगा और अपने शौर्य का प्रमाण देगा।

सूतो ने गाँव की ओर एक नज़र डाली और फिर वह प्रकृति-पुरुष के समान दौड़ता हुआ आगे बढ़ा और सूर्योदय तक उसने एक सिंह की ठाहर ढूँढ़ ली। एक चटियल मैदान में एक खोखला-सा स्थान था। उसने उसे अच्छी तरह देखा। सब मैदान कमर से ऊँची घास से आच्छादित था। वह धीरे-धीरे रेंग रहा था। शिकार के लिए उसने वह समय इसलिए और चुना था कि सिंहों और बघेरों में दिन निकलने पर कुछ सुस्ती आ जाती है। हिलती हुई घास की ओर वह धीरे-धीरे बढ़ा। हवा उसकी ओर को नहीं, वरन् उसकी ओर से बह रही थी। पीली घास में वायु के झकोरे लहरें-सी उत्पन्न करते थे मानो घास सजीव होकर सूतो को प्रोत्साहित कर रही हो। सूतो धीरे-धीरे रेंग रहा था। कीड़े और छिपकलियाँ बिचककर इधर-उधर हो जाते थे और एक साँप ने तो रास्ते से हटने से पूर्व उसे अच्छी तरह निहारा। उसके शरीर से पसीना टपक रहा था। उसके होठों का पसीना उसके मुँह में जा रहा था। जैसे ही वह एक उथली नरिया (Ravine) के निकट आया, उसने अपनी गति और धीमी कर दी और उसके किनारे लेटकर उसने चारों ओर देखा।

हवा से झकोरी हुई घास के अतिरिक्त वहाँ कोई और गति न थी। थोड़ी देर वह सुस्ताया और फिर घुटनों और कुहनियों के बल वह रेंगने लगा। घास को तोड़कर उसे अपने सिर पर ऐसे लगा लिया था जिससे ऊपर और बगल से उसका सिर न दिखाई पड़े और वह घास के पूले के समान ही दिखाई पड़े। बालू के किनारे पर आकर उसने ऊपर से नीचे की ओर देखा। ऊषः काल से जिस सिंह की खोज में था, वह वहाँ मौजूद था। पानी के गड्ढे के पास से सिंह के अध-खवे जानवर से उसने उसकी खोज पकड़ी थी। सिंह अकेला था और इसलिए वह अक्कड़ और खतरनाक भी था। सिंह अर्ध-सुषुप्त अवस्था में था। नाखून उसके खुले हुए थे। उसकी जीभ कुत्ते की भाँति लटक रही थी और जब कभी मक्खियाँ और कीड़े उसे काटते तब उसकी खाल उस

स्थान पर हिल जाती थी। सिंह भयंकर और विशाल था। सूतो को कुछ घबराहट हुई। इतने बड़े सिंह को दोनों हाथों से मारना मुश्किल था। उसके केस मटमैले, काले और छोटे थे। उसके पेट की बगल में भालों की दो गूर्थें थीं।

सूतो ने भाले को बदला। अपनी पीठ पर होकर निकाला और सीधे हाथ की उँगलियों से उसको पकड़ा। होठों को चबाते हुए उसने अपनी शक्ति संचित की। टाँगें उसकी धीरे-धीरे पेट के नीचे आईं। तब वह खड़ा हुआ। शेर को उसने ललकारा और भाला फेंकने के आसन से अपने वृषभ-कंधों की शक्ति के प्रत्येक अंश को एकत्र करके उसने भाला चलाया। बज्र की भाँति भाला चौकन्ने शेर की ओर लपका। शक्ति-पुन्ज सिंह एकदम खड़ा हुआ। उसकी पीली आँखों ने भाले और भाले वाले को देखा। उसके पुट्ठे सिकुड़े और धमाके से भाले की चोट हुई। सिंह दहाड़ा और चोट से तिलमिलाकर उसने वेदना की दहाड़ की और वह लोट-पोट होने लगा और भाले पर आक्रमण करने लगा। बाँस के टुकड़े इधर-उधर उछलने लगे। शेर उछलने लगा; पर बिंधे हुए भाले के कारण वह एक ओर को झुका था। घृणा से वह झल्लाया हुआ था। एक ही झपेट में सूतो को मारने के लिए उसने एक प्रयत्न किया। परन्तु गर्म खून उसके मुँह से गिरने लगा और एक ओर को गिरकर वह छटपटाने लगा। उसकी आँखें फटने लगीं। पंजे उसके चौड़े हुए, मानो वह अपने शत्रु को पकड़ने की कोशिश में हो।

सूतो ने गहरी साँस ली और विजय-भावना उसके चेहरे पर अंकित थी। वह नीचे को शेर की ओर को खिसका। भाले को उसने शरीर से खींचा और एक तरफ उसे रख दिया और चाकू से उसने उसके पेट में शिगाफ़ लगाए ताकि उसकी वह खाल निकाल ले, पर उसके पीछे एक छाया-सी मालूम हुई। एक पत्थर का टुकड़ा खिसक पड़ा। उस आवाज की ओर खून से लथ-पथ चाकू को हाथ में लेकर जैसे वह मुड़ा वैसे ही उसने देखा कि एक शेरनी गुफा से उसकी ओर को लपकी। एक पंजे का

वार हुआ, उसके वृषभ-कंध में एक चपेट लगी। उसने सँभलने की कोशिश की। अपनी पंगु बाँह के कारण वह तेज़ी से न उठ सका। पूँछ को भाले की तरह ऊपर उठाये हुए सिंहनी ने आक्रमण किया। अनजान में सूतो चिल्लाया। छाया की भाँति शेरनी उठी। वह मुँह बाए हुए थी। सूतो को मालूम हो गया कि वह उसका मुक़ाबला न कर सकेगा। अपने शिकारी चाकू से उसने अपनी रक्षा करनी चाही। वह एक ओर को झुक गया। शेरनी के नाखून उसको फाड़ रहे थे। लुढ़कते हुए भारी पत्थर ने, जो सिंहनी की गति से गतिशील होकर उधर आ गया था, उसकी रक्षा की; क्योंकि उससे सिंहनी के आक्रमण में ढिलाई आ गई। सूतो आगे को गिर गया। बाएँ हाथ से वह उससे चिपटना चाहता था और सीधे हाथ से वह सिंहनी पर वार कर रहा था। उसने अपनी टाँगें शेरनी के पेट में अड़ा दीं। शेरनी खड़ी हुई और पीठ के बल गिरी और अपने वजन से सूतो को उसने अधमरा कर दिया। दो बार चाकू से उसने हमला किया और दो बार उसका चाकू उसकी पसलियों में घुस गया। शेरनी ने अपने-आपको छुड़ाया और अपनी थाप उसके जमाई। सूतो के सामने दुनिया घूम-सी रही थी। उसकी आँखों के सामने अँधेरा हो गया। पर उसका चाकू यों ही हवा में वार कर रहा था। उसे सिंहनी दिखाई नहीं पड़ रही थी। उसके सामने अँधेरा-ही अँधेरा था और फिर वह बेहोश हो गया।

जब उसे चेतना हुई तो उसने आँखें फाड़कर इधर-उधर देखा। कुहनी और घुटनों के बल बैठकर उसने देखा कि सिंहनी कुछ दूर पर मरी पड़ी है और उसकी छाती से मांस के टुकड़े लटक रहे हैं। उसका कंधा फटा हुआ था। सारे शरीर में पीड़ा थी। सूतो ने अपने घाव देखे। काफ़ी दर्द था। उसकी देह में घाव कोई आसान न थे। मूर्छा के बाद उसे उल्लास हुआ। उसने दो सिंह मारे थे। वनक ऐसा काम कभी नहीं कर सकता था। उसने चाकू से सिंह की खाल निकाली और लपेट-कर उसे एक ओर रख दिया। तब फिर वह सिंहनी की खाल निकालने

बढ़ा। जैसे ही वह शिगाफ लगाना चाहता था उसकी नज़र एक पतली जंजीर में बँधे क्रॉस की ओर पड़ी। सारा रहस्य उसकी समझ में आ गया वह जंजीर लिरीना की थी। उठकर उसने जो देखा तो लिरीना के पते मिले। वह समझ सका कि सिंहनी सिंह से २०.फुट दूर को मरी पड़ी है। अगर लिरीना उसकी सहायता को न आती तो सिंहनी ने उसका काम तमाम कर दिया होता। लिरीना छाया की भाँति उसके पीछे-पीछे आई थी।

सूतो को बड़ी लज्जा आई कि एक स्त्री ने उसकी जान बचाई थी। उस पर उसे क्रोध भी आया। सिंहनी की खाल निकालकर उसे लपेटा और दोनों की खाल लपेटकर अपने गाँव की ओर चला।

एक सायंकाल को चन्द्रमा के निकलने पर सभा हुई। फ्रांसीसी अफ़सर बैठे हुए थे और नायक की नियुक्ति होनी थी। बनक ने एक विशालकाय मगर के पास खड़े होकर कहा,"मैंने इतना बड़ा मगर मारा है जितना बड़ा सूतो ने तो कभी देखा भी न होगा। मैंने एक फन्दा बाएं हाथ में लिया और सीधे में चाकू लेकर मैं पानी में कूद गया। मछली की भाँति मैं तैरा। गोते लगाकर और आगे-पीछे होकर मैंने बड़ी चतुराई से मगर के जबड़े में फन्दा डाला। मगर ने भागने की कोशिश की पर मैंने बगल से तैरकर उसका पेट फाड़ दिया। क्रोध से मगर ने नदी को मथ डाला और अपनी पूँछ की मार से उसने मुझे मार ही डाला होता। पर मेरे आक्रमण से वह मर गया और किनारे पर मैं खींच लाया अपनी डोंगी तब मैंने ली। उसके पेट से अन्तड़ियाँ निकालीं और साफ किया। तब उसमें मैंने सूखी लौकियाँ भरीं और मैं पानी से उसे खींच लाया।" बनक ने नाटक-सा करते हुए अपनी बात कही।

फ्रांसीसी अफ़सर ने तब सूतो की ओर संकेत किया। लंगड़ाते हुए और घावों को बाँधे हुए उसने सिंह की खाल फटकारते हुए एक ओर रखी। खाल इतनी बड़ी थी कि ज़मीन से पूरी हटाने पर भी पूरी तौर से वह न दिखा सका। सूतो ने कहा, "मैंने इस सिंह को मारा। बड़ी चालाकी से मैं इसकी खोज में रहा और एक ही भाले से मैंने इसको मार

दिया।" यह कहते हुए उपेक्षा की दृष्टि से उसने खाल एक ओर फेंक दी। लोगों में आश्चर्य की मुद्रा फैल गई। तब उसने सिंहनी की खाल उठाई। एक दूसरे सिंह की खाल देखकर लोग आश्चर्य-चकित रह गए। फ्रांसीसी अफ़सर ने पूछा, "सूतो ! क्या तुमने एक ही साथ इस जोड़ी को मारा ?"

सूतो ने कहा, "मैंने सिंहनी को नहीं मारा।"

उत्तेजित होकर लिरीना ने कहा, "नहीं, नहीं। यह झूठ है। इन्होंने ही दोनों को मारा है, एक को भाले से और दूसरे को चाकू से।"

"बोलो मत लिरीना," सूतो ने कहा। और लिरीना सिसकती और सुबकती रह गई !

फ्रांसीसी अफ़सर भौंचक्के-से रह गए। उपस्थित योद्धा बेचैन-से थे और बनक भी परेशान था।

फ्रांसीसी अफ़सर ने कहा, "आखिर यह मामला क्या है ?"

सूतो ने उत्तर दिया, "जब मैं सिंह की खाल खींच रहा था, सिंहनी ने मुझ पर हमला किया। मैंने अपने चाकू से उस पर वार किया। पर मैं उसे मार न सका और मैं पीछे को गिर गया और मेरी आँखों के आगे अँधेरा हो गया। तब लिरीना ने सिंहनी को मेरे भाले से मारा। मुझे पता नहीं था कि वह मेरे पीछे-पीछे आ रही थी। यह ठीक है कि यदि वह मेरी सहायता को न आई होती तो मेरा काम तमाम हो गया होता। क्योंकि मेरे एक ही भुजा है।" तब सूतो ने सिंहनी की खाल एक ओर फेंक दी और खून से सने क्रॉस को उठा लिया। उपस्थित लोगों में कानाफूँसी होने लगी। बनक ने सोचा कि ऐसा भी नायक क्या कि जिसकी जान को एक औरत बचाये। फ्रांसीसी कमिश्नर ने अन्त में कहा, 'बनक ने जो काम किया है उसको बहुत कम आदमी कर सकते हैं। हमारा खयाल है कि सिंह को मारने की अपेक्षा इतने बड़े घड़ियाल का मारना बहुत कठिन है और अधिकार-हड्डी बनक को मिलनी चाहिए। पर सूतो ने एक ऐसी बात की है जो कि एक नायक में होनी

चाहिए उसने सत्य और न्याय के लिए अपने-आपको अपमानित किया है। उसने यह स्वीकार किया है कि उसके जीवन की रक्षा एक स्त्री ने की और सचाई एक नायक के बड़प्पन का चिह्न है। सिंह को मारने के साहस की अपेक्षा उसने महानतम साहस दिखाया है और उसने अधिकार-हड्डी को सचाई की खातिर अपने प्रतिद्वन्द्वी को देने में लज्जा नहीं की। इसलिए मैं अधिकार-हड्डी को सूतो को देता हूँ। अब सूतो ही तुम-सब लोगों का नायक है और मुझे आशा है वह न्याय और बुद्धिमत्ता से शासन करेगा।"

उपस्थित लोगों में स्वीकृति का जय-घोष हुआ। बनक ने भी मुस्कराकर अपनी स्वीकृति दे दी। अधिकार-हड्डी को लेकर अधरों पर मुस्कान का भार लिये सूतो चारों ओर भीड़ में घुसा। उसने अपनी माँ को प्रणाम किया और तब वह लिरीना की ओर बढ़ा और कहा, "अब मैं नायक हूँ और तू चाहती थी मैं नायक बन जाऊँ।"

सजल नेत्रों से लिरीना ने अपनी हृदय-भावना प्रगट की।

सूतो ने कहा, "अब तो तू मेरे लिए विवाह-नृत्य दिखायगी।"

लिरीना ने मुस्कराकर कुछ कहना चाहा पर स्नेह और श्रद्धा से वह कुछ न कह सकी और नीची निगाह करके वह तनिक मुस्कराई। सूतो हृदय की भाषा को समझ गया। उपस्थित लोगों ने, सिर उठाये हुए वृक्षों ने तथा स्वच्छ आकाश से नक्षत्रों और नक्षत्रनाथ ने विशाल वृक्षों की पत्तियों से छिपकर मानो कहा :—

कुछ है, और कुछ नहीं नीची निगाह में।

१० : : श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

गौरी

(१)

शाम को, गोधूलि की बेला, कुली के सिर पर सामान रखवाए, जब बाबू राधाकृष्ण अपने घर आये, तब उनके भारी-भारी पैरों की चाल, और चेहरे के भाव से ही कुन्ती ने जान लिया कि काम वहाँ भी नहीं बना। कुली के सिर पर से बिस्तर उतरवाकर, बाबू राधाकृष्ण ने उसे कुछ पैसे दिये। कुली सलाम करके चला गया और वे पास ही पड़ी एक आराम-कुरसी पर, जिसके स्प्रिंग खुलकर कुछ ढीले होने के कारण इधर-उधर फैल गए थे, गिर-से पड़े। उनके इस प्रकार बैठने से कुछ स्प्रिंग आपस में टकराए, जिससे एक प्रकार की झन-झन की आवाज़ हुई। पास ही बैठे हुए कुत्ते ने कान उठाकर इधर-उधर देखा, फिर भों-भों करके भूँक उठा। इसी समय उनकी पत्नी कुन्ती ने कमरे में प्रवेश किया। काम की सफलता या असफलता के बारे में कुछ भी न पूछकर कुन्ती ने नम्र स्वर में कहा—"चलो हाथ-मुँह धो लो, चाय तैयार है।"

"चाय" राधाकृष्ण चौंक-से पड़े—"चाय के लिए तो मैंने नहीं कहा था।"

"नहीं कहा था तो क्या हुआ, पी लो चलकर", कुन्ती ने आग्रह-पूर्वक कहा।

"अच्छा चलो"—कहते हुए राधाकृष्ण पत्नी के पीछे-पीछे चले गए।

गौरी, अपराधिनी की भाँति, माता-पिता दोनों की दृष्टि से बचती हुई, पिता के लिए चाय तैयार कर रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि पिता की सारी कठिनाइयों की जड़ वही है। न वह होती और न पिता को उसके विवाह की चिन्ता में, इस प्रकार स्थान-स्थान घूमना पड़ता। वह मुँह खोलकर किस प्रकार कह दे कि उसके विवाह के लिए इतनी अधिक परेशानी उठाने की आवश्यकता नहीं। माता-पिता चाहे जिसके साथ उसकी शादी कर दें, वह सुखी रहेगी। न करें तो भी वह सुखी है। जब विवाह के लिए उसे जरा भी चिन्ता नहीं, तब माता-पिता इतने परेशान क्यों रहते हैं—गौरी यही न समझ पाती थी। कभी-कभी वह सोचती—'क्या मैं माता-पिता को इतनी भारी हो गई हूँ? रात-दिन सिवा विवाह के उन्हें और कुछ सूझता नहीं।' तब आत्म-ग्लानि और क्षोभ से गौरी का रोम-रोम व्यथित हो उठता। उसे ऐसा लगता कि धरती फटे और वह समा जाय, किन्तु ऐसा कभी न हुआ।

गौरी—वह गौरी जो पूनों के चाँद की तरह बढ़ना-भर जानती थी, घटने का जिसके पास कोई साधन न था—बाबू राधाकृष्ण के लिए चिन्ता की सामग्री हो गई थी। गौरी उनकी एक-मात्र सन्तान थी। उसका विवाह वे योग्य पात्र के साथ करना चाहते थे—यही सबसे बड़ी कठिनाई थी। योग्य पात्र का मूल्य चुकाने लायक उनके पास यथेष्ट सम्पत्ति न थी। यही कारण था कि गौरी का यह उन्नीसवाँ साल चल रहा था फिर भी वे कन्या के हाथ पीले न कर सके थे। गौरी ही उनकी अकेली सन्तान थी। छुटपन से ही उसका बड़ा लाड़-प्यार हुआ था। प्रायः उसकी उचित-अनुचित सभी हठ पूरी हुआ करती थीं। इसी कारण गौरी का स्वभाव निर्भीक, दृढ़-निश्चयी और हठीला था। वह एक बार जिस बात को सोच-समझकर कह दे, फिर उस बात से उसे कोई हटा न सकता था, पिता की परेशानियों को देखते हुए अनेक बार उसके जी में आया कि वह पिता से साफ़-साफ़ पूछे कि "आखिर वे

उसके विवाह के लिए इतने चिन्तित क्यों हैं ! वह स्वयं तो विवाह को इतना आवश्यक नहीं समझती। और अगर पिता विवाह को इतना अधिक महत्त्व देते हैं, तो फिर पात्र और कुपात्र क्या ? विवाह करना है कर दें, किसी के भी साथ, वह हर हालत में सुखी और सन्तुष्ट रहेगी। उनकी यह परेशानी, इतनी चिन्ता अब उससे सही नहीं जाती।" किन्तु संकोच और लज्जा उसकी जबान पर ताला-सा डाल देते। हज़ार बार निश्चय करके भी वह पिता से यह बात न कह सकी।

पिता को आते देख गौरी चुपके-से दूसरे कमरे में चली गई। राधाकृष्ण बाबू ने जैसे बे-मन से हाथ-मुँह धोया और पास ही रखी हुई एक कुरसी पर बैठ गए। वहाँ एक मेज पर कुन्ती ने चाय और कुछ नमकीन पूरियाँ पति के सामने रख दीं। पूरियों की तरफ राधाकृष्ण ने देखा भी नहीं। चाय का प्याला उठाकर पीने लगे। कुन्ती ने डरते-डरते पूछा (ऐसी कन्या को जन्म देकर जिसके लिए वर ही न मिलता हो, कुन्ती स्वयं ही जैसे अपराधिनी हो रही थी)—"जहाँ गये थे क्या वहाँ भी कुछ ठीक नहीं हुआ ?"

"ठीक ! ठीक होने को वहाँ धरा ही क्या है ?"—चाय का घूँट गले से नीचे उतारते हुए बाबू राधाकृष्ण ने कहा, "सब हमीं लोगों पर है। विवाह करना चाहें तो सब ठीक है, न करना चाहें तो कुछ भी ठीक नहीं है।"

कुन्ती ने उत्सुकता से पूछा—"फिर क्या बात है ? लड़के को देखा ?"

राधाकृष्ण—"हाँ देखा अच्छी तरह देखा ! हुँः !" राधाकृष्ण फिर चाय पीने लगे।

कुन्ती की समझ में यह पहेली न आई, उसने कहा—"जरा समझाकर कहो। तुम्हारी बात तो समझ में ही नहीं आती।"

राधाकृष्ण—"समझाकर कहता हूँ, सुनो। वह लड़का—लड़का नहीं आदमी—तुम्हारी गौरी के साथ मामूली चपरासी की तरह

दिखेगा। बोलो, करोगी ब्याह ?"

कुन्ती—"विवाह की बात तो पीछे होगी क्या रूप-रंग बहुत ख़राब है ? फोटो में तो वैसा नहीं जान पड़ता।"

राधाकृष्ण—"रूप-रंग नहीं, रहन-सहन बहुत ख़राब है। इतनी सिधाई भी तो अच्छी नहीं होती जिसके पीछे आदमी आदमी न दिखे। और फिर उमर भी तो अधिक है, ३९-३६ साल। साथ ही दो बच्चे भी हैं। उन्हीं बच्चों को सम्हालने के लिए तो वे विवाह करना चाहते हैं, नहीं तो शायद न करते। उनकी दूसरी शादी है। उनकी उमंगें, उनका उत्साह सब ठंडा पड़ गया है। वे अपने बच्चों के लिए एक धाय चाहते हैं, पर मेरी लड़की की तो दूसरी शादी नहीं है। और फिर वह साफ़-साफ़ कहते हैं कि मैं केवल बच्चों के लिए विवाह करना चाहता हूँ।"

कुन्ती ने कहा—"जिन्हें दूसरी शादी करनी होती है वे सब बच्चों के ही बहाने तो शादी करते हैं, नहीं तो यह कहें कि अपने लिए करते हैं ?"

राधाकृष्ण—"अरे नहीं नहीं, वह आदमी कपटी नहीं है। उसके भीतर कुछ और बाहर कुछ हो ही नहीं सकता। हृदय तो उसका दर्पण की तरह साफ है। पर उसका खादी का कुरता, गांधी टोपी, फटे-फटे चप्पल देखकर जी हिचकता है। वह कहीं नेता बनकर व्याख्यान देने लायक तो है, पर किसी के घर दूल्हा बनकर जाने लायक नहीं है। इसके अलावा ३०) कुल उनकी तनख्वाह है, कांग्रेस-दफ़्तर में सेक्रेटरी का काम करते हैं। तीन बार जेल जा चुके हैं। किस दिन चले जायं कुछ ठिकाना नहीं।"

कुन्ती—"आदमी तो बुरा नहीं जान पड़ता।"

राधाकृष्ण—"बुरा आदमी तो मैं भी नहीं कहता उसे, पर वह गौरी का पति होने लायक नहीं है। सच बात यह है।"

कुन्ती—"फिर तुमने क्या कह दिया ?"

राधाकृष्ण—"क्या कह देता ? उन्हें बुला आया हूँ। अगले इतवार को आयंगे, जिससे तुम भी उन्हें देख लो। और वह आने के लिए भी तो बड़ी मुश्किल से तैयार हुए। कहने लगे—'नहीं साहब ! मैं लड़की देखने न आऊँगा। इस तरह लड़की देखकर मुझसे किसी लड़की का अपमान नहीं किया जाता।' फिर जब मैंने उन्हें समझाकर कहा कि आप लड़की को देखेंगे, लड़की और उसकी माँ आपको देख लेंगी, तब कहीं बड़ी मुश्किल से राज़ी हुए।"

गौरी दरवाज़े की आड़ से सब बातें सुन रही थी। जिस व्यक्ति के प्रति उसके पिता इतने असंतुष्ट और उदासीन थे, उसके प्रति गौरी के हृदय में अनजाने ही कुछ श्रद्धा के भाव जाग्रत हो गए। राधाकृष्ण बाबू पान का बीड़ा उठाकर अपनी बैठक में चले गए। और उसी रात फिर उन्होंने अपने कुछ मित्रों और रिश्तेदारों को गौरी के लिए योग्य वर तलाश करने को कई पत्र लिखे।

(२)

अगला इतवार आया। आज ही बाबू सीताराम जी, गौरी को देखने या अपने-आपको दिखलाने आयंगे। बाबू राधाकृष्णजी ने यह पहले से ही कह रखा है कि किसी बाहर वाले को कुछ न मालूम पड़े कि कोई गौरी को देखने आया है। अतएव यह बात कुछ गुप्त रखी गई है ! घर के भीतर आँगन में ही उनके बैठने का प्रबन्ध किया गया है। तीन-चार कुर्सियों के बीच में एक मेज़ है, जिस पर एक साफ़ धुला हुआ खादी का कपड़ा बिछा दिया गया है। और एक गिलास में आँगन के ही गुलाब के कुछ फूलों को तोड़कर, गुलदस्ते का स्वरूप दिया गया है। बहुत ही साधारण-सा आयोजन है। सीतारामजी-सरीखे व्यक्ति के लिए किसी विशेष आडम्बर की आवश्यकता भी तो न थी।

यथासमय बाबू सीताराम जी अपने दोनों बच्चों के साथ आये। बच्चे भी वही खादी के कुरते और हाफ पैण्ट पहने थे। न जूता, न मौज़ा; न किसी प्रकार का ठाट-बाट। पर दोनों बड़े प्रसन्न, बड़े हँसमुख।

आकर घर में वे इस प्रकार खेलने लगे, जैसे इस घर से वे चिर-परिचित हों। कुन्ती एक तरफ़ बैठी थी। बच्चों के कोलाहल से परिपूर्ण घर उसे क्षण-भर के लिए नन्दन-कानन-सा जान पड़ा। उसने मन-ही-मन सोचा —'कितने अच्छे बच्चे हैं! यदि बिना किसी प्रकार का सम्बन्ध हुए भी सीतारामजी इन बच्चों के सम्हालने का भार उसे सौंपें, तो वह खुशी-खुशी ले ले। वह बच्चों के खेल में इतनी तन्मय हो गई कि क्षण-भर के लिए भूल गई कि सीतारामजी भी बैठे हैं, उनसे भी कुछ बातचीत करनी है। इसी समय अचानक छोटे बच्चे को जैसे कुछ याद आ गया हो। दौड़कर पिता के पास आया। उनके पैरों के बीच में खड़ा होकर बोला—"बाबू तुम तो कैते थे न कि माँ को दिकाने ले चलते हैं। माँ कआँ है, बतलाओ?"

बाबू ने किंचित् हँसकर कहा—"ये माँजी बैठी हैं, इनसे कहो, यही तुम्हें दिखायंगी।"

बालक ने मचलकर कहा—"ऊँ हूँ तुम दिकाओ।" और इसी समय एक बड़ी-सी सफेद बिल्ली आँगन से होती हुई भीतर भाग गई। बच्चे बिल्ली के पीछे सब-कुछ भूलकर, दौड़ते हुए अन्दर पहुँच गए। गौरी पिछले बरामदे में चुपचाप खड़ी थी। वह न जाने किस ध्यान में थी, तब तक छोटे बच्चे ने उसका आँचल पकड़कर खींचते हुए पूछा —"क्या तुम अमारी माँ हो?" गौरी ने देखा हृष्ट-पुष्ट सुन्दर-सा बालक, कितना भोला, कितना निश्छल। उसने बालक को गोद में उठाकर कहा—"हाँ।" बच्चे ने फिर उसी स्वर में पूछा—"अमारे घर चलोगी न? बाबू तो तुम्हें लेने आये हैं औल हम भी आये हैं।" अब तो गौरी उनकी बातों का उत्तर न दे सकी। पूछा—"मिठाई खाओगे।" "हाँ खायंगे"—दोनों ने एक ही साथ एक ही स्वर से उत्तर दिया। कुछ ही क्षण बाद कुन्ती ने अन्दर आकर देखा कि छोटा बच्चा गौरी की गोद में और बड़ा उसी के पास बैठा मिठाई खा रहा है। एक निःश्वास के साथ कुन्ती बाहर चली गई और थोड़ी देर बाद ज्यों ही

गौरी ने ऊपर आँख उठाई, उसने माता-पिता दोनों को सामने खड़ा पाया। पिता ने स्नेह के स्वर में पुत्री से कहा—"बेटा, ज़रा बाहर चलो, चलती हो न?" गौरी ने कोई उत्तर न दिया। उसने बच्चों का हाथ-मुँह धुलाया, उन्हें पानी पिलाया, फिर माँ के पीछे-पीछे बाहर चली गई। बच्चे अब भी उसी को घेरे थे। वे उसे छोड़ना ही न चाहते थे। बड़ी मुश्किल से सीतारामजी उन्हें बुलाकर कुछ देर तक अपने पास बिठा सके, किन्तु ज़रा-सा मौक़ा पाते ही वे फिर जाकर गौरी के आस-पास बैठ गए। पिता के विरुद्ध उन्हें कुछ नालिशें भी दायर करनी थीं, जो पिता के पास बैठकर न कर सकते थे।

छोटे ने कहा—"बाबू हमें कबी खिलौने नहीं लाकर देते।"

बड़े ने कहा—"मिठाई भी तो कभी नहीं खिलाते।"

छोटा बोला—"औल अमें छोलकर दफतर जाते हैं, दिन-भर नईं आते, बाबू अच्छे नईं हैं।"

बड़ा बोला—"माँ तुम चलो, नहीं तो हम भी यहीं रहेंगे।"

बच्चों की बातों से सभी को हँसी आ रही थी। कुन्ती ने बच्चों से कहा—"तो तुम दोनों भाई यहीं रह जाओ, बाबू को जाने दो, है न ठीक।"

काफ़ी देर हो गई यह देखकर सीतारामजी ने कहा—"समय बहुत हो चुका है, अब चलूँगा, नहीं तो शाम को ट्रेन न मिल सकेगी।" फिर राधाकृष्ण की तरफ़ देखकर कहा—"आप लोगों से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। लड़की तो आपकी साक्षात् लक्ष्मी है। और यह मैं जानता था कि आपकी लड़की ऐसी ही होगी, इसीलिए देखने को आना नहीं चाहता था।" फिर कुछ ठहरकर बोले, "और सच बात तो यह है कि मुझे पत्नी की उतनी ज़रूरत नहीं, जितनी इन बच्चों को ज़रूरत है एक माँ की। मेरा क्या ठिकाना? आज बाहर हूँ तो कल जेल में। मेरे बाद इनकी देख-रेख करने वाला कोई नहीं रहता। यही सोच-समझकर विवाह करने को तैयार हो सका हूँ, अन्यथा इस उमर

में विवाह ?"—कहकर वे स्वयं हँस पड़े ।

राधाकृष्ण ने मन-ही-मन सोचा—'तो मेरी लड़की इनके बच्चों की धाय बनकर जायगी ।' कुन्ती ने सोचा—'कोई भी स्त्री ऐसे बच्चों का लालन-पालन कर अपना जीवन सार्थक बना सकती है ।' गौरी ने मन-ही-मन इस महापुरुष के चरणों में प्रणाम किया और बच्चों की ओर ममता-भरी दृष्टि से देखा । यह दृष्टि कह रही थी कि किसी विलासी युवक की पत्नी बनने से अधिक मैं इन भोले-भाले बच्चों की माँ बनना पसन्द करूँगी । सीतारामजी को जाने के लिए प्रस्तुत देखकर बच्चे फिर गौरी से लिपट गए । यदि राधाकृष्ण (झूठ ही सही) एक बार भी कहते कि बच्चों को छोड़ जाओ तो सीतारामजी बच्चों को छोड़कर निश्चिन्त होकर चले जाते । परन्तु इस ओर से जब ऐसी कोई बात न हुई तो बच्चों को सिनेमा, सरकस और मिठाई का प्रलोभन देकर बड़ी कठिनाई से गौरी से अलग करके वे ले जा सके । जाते समय सीतारामजी को पक्का विश्वास था कि विवाह होगा, केवल तारीख़ निश्चित करने-भर की देर है ।

(३)

सीतारामजी उस पत्र की प्रतीक्षा में थे जिसमें विवाह की निश्चित तारीख लिखकर आने वाली थी । देश की परिस्थिति, गवर्नमेंट का रुख, और महात्माजी के वक्तव्यों को पढ़कर, वे जानते थे कि निकट भविष्य में फिर सत्याग्रह-संग्राम छिड़ने वाला है । न जाने किस दिन उन्हें फिर जेल का मेहमान बनना पड़े । पिछली बार जब गये थे तब उनकी बूढ़ी बुआ थीं, पर अब तो वे भी नहीं रहीं । यह कहारिन क्या बच्चों की देख-भाल कर सकेगा ? बच्चों की उन्हें बड़ी चिन्ता थी । और बच्चे भी सदा माँ-माँ की रट लगाए रहते थे । उन्होंने फिर एक पत्र बाबू राधाकृष्ण को शीघ्र ही तारीख निश्चित करने के लिए लिख भेजा । उधर राधाकृष्णजी दूसरी ही बात तै कर रहे थे । उन्होंने सीतारामजी के पत्र के उत्तर में लिख भेजा कि गौरी की माँ पुराने खयाल की हैं । वे जन्म-पत्री मिलवाये बिना विवाह नहीं करना चाहतीं, अतएव आप

अपनी जन्म-पत्री भेज दें। पत्र पढ़ने के साथ ही सीतारामजी को यह समझने में देरी न लगी कि यह विवाह न करने का केवल बहाना-मात्र है, किन्तु फिर भी उन्होंने जन्म-पत्री भेज दी। जन्म-पत्री भेजने के कुछ ही दिन बाद उत्तर भी आ गया कि जन्म-पत्री नहीं मिलती, इसलिए विवाह न हो सकेगा। क्षमा कीजिएगा।

बाबू राधाकृष्ण को गौरी के लिए दूसरा वर मिल गया था, जो उनकी समझ में गौरी के बहुत योग्य था। धनवान् ये भी अधिक न थे, पर अभी-अभी नायब तहसीलदारी के पद पर नियुक्त हुए थे, आगे और भी उन्नति की आशा थी। बी० ए० पास थे। देखने में अधिक सुन्दर न थे। बदशकल भी कहे जा सकते थे, पर पुरुषों की भी कहीं सुन्दरता देखी जाती है? उमर कुछ अधिक न थी यही २४—२५ साल। लेने-देने का कुछ झगड़ा यहाँ भी न था। पहली शादी थी और माँ-बाप, भाई-बहन से भरा-पूरा परिवार था। राधाकृष्णजी इससे अधिक और चाहते ही क्या थे। ईश्वर को उन्होंने कोटिशः धन्यवाद दिये, जिसकी कृपा से ऐसा अच्छा वर उन्हें गौरी के लिए मिल गया।

विवाह आगामी आषाढ़ में होना निश्चित हुआ। दोनों तरफ से विवाह की तैयारी हो रही थी। राधाकृष्णजी की यही तो एक लड़की थी। वे बड़ी तन्मयता के साथ गहने-कपड़ों का चुनाव करते थे। सोचते थे, देर में शादी हुई तो क्या हुआ? वर भी तो कितना अच्छा ढूँढ़ निकाला है। कुन्ती भी बहुत खुश थी। उसकी आँखों में वह दृश्य झूलने लगता था कि उसका दामाद छोटा साहब हो गया है, बेटी-दामाद छोटे-छोटे बच्चों के साथ उससे मिलने आये हैं। किन्तु बच्चों की बात सोचते ही उसे सीतारामजी के दोनों बच्चे तुरन्त याद आ जाते और आ जाती उनकी बात। बच्चों की देख-रेख करने वाला कोई नहीं है। फिर वह सोचती उँह, दुनिया में और भी तो लड़कियाँ हैं। कर लें शादी, क्या मेरी गौरी ही है। इस प्रकार पति-पत्नी दोनों ही प्रसन्न थे, पर गौरी

से कौन पूछता कि उसके हृदय में कैसी हलचल मची रहती है। रह-रहकर उसे उन बच्चों का भोला-भाला मुँह और मीठी-मीठी बातें याद आ जातीं और साथ ही याद आ जाते विनयी, नम्र और सादगी की प्रतिमा सीतारामजी। उनकी याद आते ही श्रद्धा से गौरी का माथा अपने आप ही झुक जाता। देश-भक्त त्यागी वीरों के लिए उसके हृदय में सम्मान था। सीतारामजी ने भी तो देश के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया है। नहीं तो बी० ए० पास करने के बाद क्या प्रयत्न करने पर उन्हें भी नायब तहसीलदारी न मिल जाती? मिलती क्यों नहीं? पर सीतारामजी सरकार की गुलामी पसन्द करते तब न? दूसरी ओर थे उसके होने वाले वर नायब तहसीलदार साहब, जिन्हें अपने आराम, अपने ऐश के लिए, ब्रिटिश गवर्नमेंट के जरा से इंगित-मात्र पर निरीह देशवासियों के गले पर छुरी फेरने में जरा भी संकोच या हिचक नहीं। जिनके सामने कुछ चाँदी के टुकड़े फेंक दिए जाते हैं और वह दुम हिलाते हुए निन्द्य-से-निन्द्य कर्म करने में भी किंचित् लज्जित नहीं होते। घृणा से गौरी का जी भर जाता। किन्तु उसके इन मनोभावों को जानने वाला यहाँ कोई भी न था। वह रात-दिन एक प्रकार की अव्यक्त पीड़ा से विकल-सी रहती। बहुत चाहती थी कि अपनी माँ से कह दे कि वह नायब तहसीलदार से शादी न करेगी, किन्तु लज्जा उसे कुछ भी न कहने देती। ज्यों-ज्यों विवाह की तिथि नज़दीक आती, गौरी की चिन्ता बढ़ती ही जाती थी।

विवाह की निश्चित तारीख से १५ दिन पहले एक दिन एकाएक तार आया कि नायब तहसीलदार साहब के पिता का देहान्त हो गया। इस मृत्यु के कारण विवाह साल-भर को टल गया। गौरी के माता-पिता बड़े दुखी हुए, किन्तु गौरी के सिर पर से चिन्ता का पहाड़-सा हट गया।

(४)

इसी बीच सत्याग्रह-आन्दोलन की लहर सारे देश-भर में बड़ी

तीव्र गति से फैल गई। शहर-शहर में गिरफ्तारियों का ताँता-सा लग गया। रोज ही न जाने कितने गिरफ्तार होते, कितनों को सज़ा होती। कहीं लाठी चार्ज! कहीं १४४! सरकार की दमन की चक्की बड़े भयंकर रूप से चल रही थो। गौरी को चिन्ता थी उन बच्चों की। जब से सत्याग्रह-संग्राम छिड़ा था, तभी से उसे फिकर थी कि न जाने कब सीतारामजी गिरफ्तार हो जायं। और फिर वे बच्चे बेचारे—उन्हें कौन देखेगा। रोज़ का अखबार ध्यान से पढ़ती और कानपुर का समाचार तो और भी ध्यान से देखती थी। और इसी प्रकार एक दिन उसने पढ़ा कि राज-द्रोह के अपराध में सीतारामजी गिरफ्तार हो गए और उन्हें एक साल का सपरिश्रम कारावास हुआ है। इस समाचार को पढ़कर गौरी कुछ क्षण तक स्तब्ध-सी खड़ी रही। फिर कुछ सोचती हुई टहलने लगी। कुछ ही देर बाद उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। वह माँ के पास गई। माँ कोई पुस्तक देख रही थी। उसने अपने सारे साहस को समेटकर दृढ़ता से कहा—"माँ, मैं कानपुर जाऊँगी।"

"कानपुर में क्या है?" आश्चर्य से कुन्ती ने पूछा।

गौरी—"वहाँ बच्चे हैं।"

माँ ने उसी स्वर में कहा—"बच्चे? किसके बच्चे? कैसी बातें करती है गौरी, पागलों की-सी।"

गौरी—"नहीं माँ, मैं पागल नहीं हूँ। बच्चों को तुम भी जानती हो। उनके पिता को राज-द्रोह के मामले में साल-भर की सज़ा हो गई है। बच्चे छोटे हैं। मैं जाऊँगी माँ। मुझे जाना ही पड़ेगा।"

गौरी के स्वभाव से कुन्ती भली भाँति परिचित थी। वह जानती थी कि गौरी जिस बात को हठ पकड़ती है, कभी छोड़ती नहीं। अतएव सहसा वह गौरी का विरोध न कर सकी, बोली—"पर तेरे बाबूजी तो बाहर गये हैं, उन्हें तो आ जाने दे।"

पर गौरी ने दृढ़ता के साथ कहा—"बाबूजी के आने तक नहीं

ठहर सकूँगी माँ। मुझे जाने दो। रास्ते में मुझे कोई कष्ट न होगा। अब मैं काफ़ी बड़ी हो गई हूँ।"

और उसी दिन शाम को एक नौकर के साथ गौरी कानपुर चली गई।

साल भर बाद—

अपनी सजा पूरी करके सीतारामजी घर लौटे। इस साल-भर के भीतर उन्होंने एक बार भी बच्चों को न देखा था। उन्हें कायदे के अनुसार हर महीने उनका कुशल-समाचार मिल जाता था, पर लगातार उन्हें बच्चों की चिन्ता बनी ही रहती थी। जिस कहारिन के भरोसे वे बच्चों को छोड़ गए थे, उसके भी तीन-चार बच्चे थे। वह बच्चों को कैसे रखेगी, सो सीतारामजी जानते थे; पर विवशता थी क्या करते। सवेरे-सवेरे छः बजे ही वे जेल से मुक्त कर दिये गए। एक ताँगे पर बैठकर वे घर की ओर चले। जेब में कुछ पैसे थे। एक जगह गरम-गरम जलेबियाँ बन रही थीं। बच्चों के लिए थोड़ी-सी खरीद लीं। घर के दरवाज़े पर पहुँचे। दरवाज़ा खुला था। पर घर के अन्दर पैर रखने में हृदय धड़कता था। न जाने बच्चे किस हालत में हों। वे चोरों की तरह चुपके-चुपके घर में घुसे। परन्तु यह क्या? आँगन में पहुँचते ही वे ठगे-से खड़े रह गए। फिर जरा आगे बढ़कर उन्होंने कहा—'आप?' और गौरी ने झुककर उनकी पद-धूलि माथे से लगा ली।

११ : : श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

डाची

काटपी[1] सिकन्दर के मुसलमान जाट बाकर को अपने माल की ओर लालसा-भरी निगाहों से ताकते देखकर चौधरी नन्दू वृक्ष की छाँह में बैठे-बैठे अपनी ऊँची घरघराती आवाज में ललकार उठा—"रे-रे अठे के करै है ?" और उसकी छः फुट लम्बी सुगठित देह, जो वृक्ष के तने के साथ आराम कर रही थी, तन गई और बटन टूटे होने के कारण मोटी खादी के कुर्ते से उसका विशाल वक्षस्थल और उसकी बलिष्ठ भुजाएं दृष्टिगोचर हो उठीं।

बाकर तनिक समीप आ गया। गर्द से भरी हुई छोटी नुकीली दाढ़ी और शरई मूछों के ऊपर गढ़ों में धँसी हुई दो आँखों में निमित्त-मात्र के लिए चमक पैदा हुई और जरा मुस्कराकर उसने कहा—"डाची देख रहा था चौधरी, कैसी खूबसूरत और जवान है, देखकर भूख मिटती है।"

अपने माल की प्रशंसा सुनकर चौधरी का तनाव कुछ कम हुआ; खुश होकर बोला—"किसी साँड़' कौन-सी डाची ?"

"वह पहली तरफ से चौथी।' बाकर ने इशारा करते हुए कहा।

ओंकाट[2] के एक घने पेड़ की छाया में आठ-दस ऊँट बँधे थे।

---

१ काटपी = गाँव

२ ओंकाट = एक वृक्ष विशेष।

उन्हीं में वह जवान साँडनी अपनी लम्बी सुडौल और सुन्दर गर्दन बढ़ाए घने पत्तों में मुँह मार रही थी, बड़े-बड़े ऊँचे ऊँटों, सुन्दर साँडनियों, काली मोटी बेडौल भैंसों, सुन्दर नगौरी सींगों वाले बैलों के सिवा कुछ न दिखाई देता था। गधे भी थे, पर न होने के बराबर। अधिकांश तो ऊँट ही थे। बहावलनगर मरुस्थल में होने वाली मालमण्डी में उनका आधिक्य है भी स्वाभाविक। ऊँट रेगिस्तान का जहाज है, इस रेतीले इलाके में आमद्-रफ्त, खेती-बाड़ी और बारबरदारी का काम उसी से होता है। पुराने समय में जब गाय दस-दस और बैल पन्द्रह-पन्द्रह रुपए में मिल जाते थे तब भी अच्छा ऊँट पचास से कम में हाथ न आता था। अब भी जब इस इलाके में नहर आ गई है और पानी की इतनी किल्लत नहीं रही, ऊँट का महत्त्व कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ा ही है। सवारी के ऊँट दो-दो सौ से तीन-तीन सौ तक पाये जाते हैं और बाही तथा बारबरदारी के भी अस्सी-सौ से कम में हाथ नहीं आते।

तनिक और आगे बढ़कर बाकर ने कहा—"सच कहता हूँ, चौधरी इस जैसी सुन्दरी साँडनी मुझे सारी मण्डी में दिखाई नहीं दी।"

हर्ष से नन्दू का सीना दुगना हो गया, बोला—"आ एक ही के, इह तो सगली फूटरी है। हूँ तो इन्हें चारा फलूँसो नीरिया करूँ।"[1]

धीरे से बाकर ने पूछा—"बेचोगे इसे?"

नन्दू ने कहा—"बेचने लई तो मण्डी माँ आऊँ हूँ।"

"तो फिर बताओ कितने की दोगे?" बाकर ने पूछा।

नन्दू ने नख से शिख तक बाकर पर एक निगाह डाली और हँसते हुए बोला—"तन्ने चाही जै का तेरे धनी बेई मोल लेसी?"[2]

---

१ यह एक ही क्या, यह तो सब ही सुन्दर हैं, मैं इन्हें चारा और फलूँसी (जवार और मोठ) देता हूँ।

२ तुझे चाहिए या अपने मालिक के लिए मोल ले रहा है?

"मुझे चाहिए"—बाकर ने दृढ़ता से कहा।

नन्दू ने उपेक्षा से सिर हिलाया। इस मजदूर की यह बिसात कि ऐसी सुन्दर साँडनी मोल ले, बोला—"तू कि लेसी?"

बाकर की जेब में पड़े हुए डेढ़ सौ के नोट जैसे बाहर उछल पड़ने को व्यग्र हो उठे, तनिक जोश के साथ उसने कहा "तुम्हें इससे क्या, कोई ले, तुम्हें अपनी कीमत से गरज है, तुम मोल बताओ।"

नन्दू उसके जीर्ण-शीर्ण कपड़ों, घुटनों से उठे हुए तहमद और जैसे नूह के वक्त से भी पुराने जूते को देखते हुए कहा—"जा-जा तू इशी-विशी साँडनी खरीद ले, इसका मूल तो १६०) से कम नहीं। टालने की गरज आई, इंगो मोल तो आठ बीसी सूं घाट के नहीं।"[1]

एक निमिष के लिए बाकर के थके हुए, व्यथित चेहरे पर आह्लाद की रेखा भी झलक उठी। उसे डर था कि चौधरी कहीं ऐसा मूल्य न बता दे, जो उसकी बिसात से बाहर हो, पर जब अपनी जबान से उसने १६०) बताए तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। १५०) तो उसके पास थे ही। यदि इतने पर भी चौधरी न माना; तो दस रुपए वह उधार कर लेगा। भाव-ताव तो उसे करना आता न था, झट से उसने डेढ़ सौ के नोट निकाले और नन्दू के आगे फेंक दिए, और बोला—"गिन लो, इनसे अधिक मेरे पास नहीं, अब आगे तुम्हारी मर्जी।" नन्दू ने अन्यमनस्कता से नोट गिनने आरम्भ कर दिए, पर गिनती खत्म करते ही उसकी आँखें चमक उठीं। उसने तो बाकर को टालने के लिए ही मूल्य १६०) बता दिया था। नहीं मण्डी में अच्छी-से-अच्छी डाची भी डेढ़ सौ में मिल जाती है और इसके तो १४०) पाने की भी उसने स्वप्न तक में कल्पना न की थी। पर शीघ्र ही मन के भावों को मन में छिपाकर और बाकर पर अहसान का बोझ लादते हुए नन्दू बोला—"साँड तो मेरी दो सौ की है पण जा सागी मोल मियाँ तले दस

---

१ जा-जा तू कोई ऐसी-वैसी साँडनी खरीद ले, इसका मूल्य तो १६०) से कम नहीं। टालने की गरज से कहा।

छाड़ियाँ।"[1] और यह कहते-कहते उठकर उसने साँडनी की रस्सी बाकर के हाथ में दे दी।

क्षण-भर के लिए उस कठोर व्यक्ति का जी भर आया। यह साँडनी उसके यहाँ ही पैदा हुई और पली थी, आज पाल-पोसकर उसे दूसरे के हाथ में सौंपते हुए उसके मन की कुछ ऐसी हालत हुई, जो लड़की को सुसराल भेजते समय पिता की होती है। जरा काँपती आवाज में, स्वर को तनिक नर्म करते हुए उसने कहा—"आ साँड सोरी रहेडी है, तूं इन्हें रेहड़ में ईंन गेर दई।"[2] ऐसे ही, जैसे श्वसुर दामाद से कह रहा हो—"मेरी लड़की लाडों पली है, देखना इसे कष्ट न होने देना।"

आह्लाद के परों पर उड़ते हुए बाकर ने कहा—"तुम जरा भी चिन्ता न करो, जान देकर पालूँगा।"

नन्दू ने नोट अंटी में सम्भालते हुए जैसे सूखे हुए गले को जरा तर करने के लिए घड़े में से मिट्टी का प्याला भरा—मण्डी में चारों ओर धूल उड़ रही थी। शहरों की माल-मण्डियों में भी, जहाँ बीसियों अस्थायी नलके लग जाते हैं और सारा-सारा दिन छिड़काव होता रहता है—धूल की कमी नहीं होती; फिर इस रेगिस्तान की मण्डी पर तो धूल का ही साम्राज्य था। गन्ने वाले की गंडेरियों पर, हलवाई के हलवे और जलेबियों पर और खोंचे वाले के दही-पकौड़ी पर, सब जगह धूल का पूर्णाधिकार था। यहाँ वह सर्वव्यापक थी, सर्व-शक्तिमान थी। घड़े का पानी टाँचियों द्वारा नहर से लाया गया था, पर यहाँ आते-जाते कीचड़ हो गया था। नन्दू का खयाल था कि निथरने पर पियेगा, पर गला कुछ सूख रहा था। एक घूँट में प्याले को खत्म करके नन्दू

---

१ साँडनी तो मेरी २००) की है, पर जा सारी कीमत में से तुम्हें दस रुपए छोड़ दिए।

२ यह साँडनी अच्छी तरह से रखी गई है, तू इसे यों ही मिट्टी में न रोल देना।

ने बाकर से भी पानी पीने के लिए कहा। बाकर आया था तो उसे गज़ब की प्यास लगी हुई थी; पर अब उसे पानी पीने की फ़ुर्सत कहाँ? वह रात होने से पहले-पहले गाँव पहुँचना चाहता था। डाची की रस्सी पकड़े हुए वह धूल को जैसे चीरता हुआ चल पड़ा।

बाकर के दिल में बड़ी देर से एक सुन्दर और युवा डाची खरीदने की लालसा थी। जाति का वह कमीन था। उसके पूर्वज कुम्हारों का काम करते थे; किन्तु उसके पिता ने अपना पैत्रिक काम छोड़कर मज-दूरी करना ही शुरू कर दिया था और उसके बाद बाकर भी इसी से अपना और अपने छोटे-से कुटुम्ब का पेट पालता आता था। वह काम अधिक करता हो, यह बात न थी; काम से उसने सदैव जी चुराया था, और चुराता भी क्यों न, जब कि उसकी पत्नी उससे दुगना काम करके उसके भार को बटाने और उसे आराम पहुँचाने के लिए मौजूद थी। कुटुम्ब बड़ा नहीं था—एक वह, एक उसकी पत्नी और नन्हीं-सी बच्ची, फिर किसलिए वह जी हलका न करता? पर क्रूर और वेपीर विधाता—उसने उसे उस विस्मृति से, सुख की उस नींद से जगाकर अपना उत्तरदायित्व महसूस करने पर बाधित कर दिया; उसे बता दिया कि जीवन में सुख नहीं, आराम नहीं, दुःख भी है, परिश्रम भी है।

पाँच वर्ष हुए उसकी वही आराम करने वाली प्यारी पत्नी सुन्दर गुड़िया-सी लड़की को छोड़कर परलोक सिधार गई थी। मरते समय अपनी सारी करुणा को अपनी फीकी और श्री-हीन आँखों में बटोरकर उसने बाकर से कहा था—'मेरी रज़िया अब तुम्हारे हवाले है। इसे कष्ट न होने देना।'—और उसी एक वाक्य ने बाकर के समस्त जीवन के रुख को पलट दिया था। उसकी मृत्यु के बाद ही वह अपनी विधवा बहन को उसके गाँव से ले आया था और अपने आलस्य तथा प्रमाद को छोड़कर अपनी मृत पत्नी की अन्तिम अभिलाषा को पूरा करने में संलग्न हो गया था। यह सम्भव भी कैसे था कि अपनी पत्नी

की—जिसे वह दिलोजान से प्यार करता था, जिसके निधन का गम इसके हृदय के अज्ञात पर्दों तक छा गया था; जिसके बाद उम्र होने पर भी, धर्म की आज्ञा होने पर भी, लोगों के विवश करने पर भी उसने दूसरा विवाह न किया था। अपनी इसी प्यारी पत्नी की अन्तिम अभिलाषा की अवहेलना करता ?

वह दिन-रात काम करता था ताकि अपनी मृत पत्नी की उस धरोहर को, अपनी उस नन्हीं-सी गुड़िया को, भाँति-भाँति की चीजें लाकर प्रसन्न रख सके। जब भी कभी वह मण्डी को जाता, तो नन्हीं-सी रजिया उसकी टाँगों से लिपट जाती और अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उसके गर्द से अटे हुए चहरे पर जमाकर पूछती—"अब्बा, मेरे लिए क्या लाये हो ?" तो वह उसे अपनी गोद में ले लेता और कभी मिठाई और कभी खिलौनों से उसकी झोली भर देता। तब रजिया उसकी गोद से उतर जाती और अपनी सहेलियों को अपने खिलौने और मिठाई दिखाने के लिए भाग जाती। यही गुड़िया जब आठ साल की हुई, तो एक दिन मचलकर अपने अब्बा से कहने लगी—"अब्बा हम तो डाची लेंगे, अब्बा हमें डाची ले दो।" भोली-भाली निरीह बालिका उसे क्या मालूम कि वह एक विपन्न गरीब मजदूर की बेटी है, जिसके लिए डाची खरीदना तो दूर रहा, डाची की कल्पना करना भी गुनाह है। रूखी हँसी हँसकर बाकर ने उसे अपनी गोद में ले लिया और बोला—"रज्जो, तू तो खुद डाची है।" पर रजिया न मानी। उस दिन मशीर माल अपनी साँडनी पर चढ़कर अपनी छोटी लड़की को अपने आगे बिठाकर दो-चार मजदूर लेने के लिए स्वभूमि-स्थित उस काट में आये थे। तभी रजिया के नन्हे-से मन में डाची पर सवार होने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो उठी थी, और उसी दिन से बाकर का रहा-सहा प्रमाद भी दूर हो गया था।

उसने रजिया को टाल तो दिया था, पर मन-ही-मन उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह अवश्य रजिया के लिए एक सुन्दर-सी डाची मोल

लेगा। उसी इलाके में जहाँ उसकी आय की औसत साल-भर में तीन आने रोजाना भी न होती थी, अब आठ-दस आने हो गई, दूर-दूर के गाँवों में अब वह मजदूरी करता। कटाई के दिनों में रात-दिन काम करता, फसल काटता, दाने निकालता, खलिहानों में अनाज भरता, नीरा डालकर भूसे के कूप बनाता, बिजाई के दिनों में हल चलाता, पैतियाँ बनाता, बीज फेंकता। इन दिनों में उसे पाँच आने से लेकर आठ आने रोजाना तक मज़दूरी मिल जाती, जब कोई काम न होता तो प्रातः उठकर आठ-आठ कोस की मंजिल मारकर मण्डी जा पहुँचता और आठ-दस आने की मजूरी करके ही वापस लौटता। इन दिनों में वह रोज छः आने बचाता आ रहा था, इस नियम में उसने किसी प्रकार भी ढील न होने दी थी, उसे जैसे उन्माद-सा हो गया था। बहन कहती—"बाकर अब तो तुम बिलकुल ही बदल गए हो, पहले तो तुमने कभी ऐसी जी तोड़कर मेहनत न की थी।"

बाकर हँसता और कहता—"तुम चाहती हो मैं आयु-भर निठल्ला बैठा रहूँ।"

बहन कहती—"निठल्ला बैठने को तो मैं नहीं कहती, पर सेहत गँवाकर धन इकट्ठा करने की सलाह भी मैं नहीं दे सकती।"

ऐसे अवसर पर सदैव बाकर के सामने उसकी मृत पत्नी का चित्र खिंच जाता, उसकी अन्तिम अभिलाषा उसके कानों में गूँज जाती। वह आँगन में खेलती हुई रजिया पर एक स्नेह-भरी दृष्टि डालता और विषाद से मुस्कराकर फिर अपने काम में लग जाता, और आज डेढ़ वर्ष की कड़ी मशक्कत के बाद, वह अपनी संचित अभिलाषा को पूरा कर सका था।

उसके हाथ में साँडनी की रस्सी थी और नहर के किनारे-किनारे वह चला जा रहा था।

शाम का वक्त था, पश्चिम की ओर डूबते सूरज की किरणें धरती को सोने का अन्तिम दान कर रही थीं। वायु में ठण्डक आ गई थी

और कहीं दूर खेतों में टिटीहरी 'टिहूँ-टिहूँ' कर रही थी। बाकर के मन में अतीत की सब बातें एक-एक करके आ रही थीं। इधर-उधर कभी कोई किसान अपने ऊँट पर सवार जैसे फुदकता हुआ निकल जाता था और कभी-कभी खेतों से वापिस आने वाले किसानों के लड़के घर में रखे हुए घास-पट्ठे के गट्ठों पर बैठे बैलों को पुचकारते, किसी गीत का एक-आध बन्द गाते, या छकड़े के पीछे बँधे हुए चुपचाप चले जाने वाले ऊँटों की कूथनियों से खेलते चले आते थे।

बाकर ने स्वप्न से जागते हुए पश्चिम की ओर अस्त होते हुए सूरज की ओर देखा, फिर सामने की ओर शून्य में नज़र दौड़ाई—उसका गाँव अभी बड़ी दूर था। पीछे की ओर हर्ष से देखकर और मौन रूप से चली आने वाली साँडनी को प्यार से पुचकारकर वह और भी तेजी से चलने लगा—कहीं उसके पहुँचने से पहले रजिया सो न जाये।

मशीरमाल की काट नजर आने लगी। यहाँ से उसका गाँव समीप ही था। यही कोई दो कोस। बाकर की चाल धीमी हो गई और इसके साथ ही कल्पना की देवी, अपनी रंग-बिरंगी तूलिका से उसके मस्तिष्क के चित्रपट पर तरह-तरह की तस्वीरें बनाने लगी। बाकर ने देखा—उसके घर पहुँचते ही नन्हीं रजिया, आह्लाद से नाचकर उसकी टाँगों से लिपट गई है और फिर डाची को देखकर उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आश्चर्य और उल्लास से भर गई हैं। फिर उसने देखा—वह रजिया को आगे बिठाए, सरकारी खाले (छोट नहर) के किनारे-किनारे डाची पर भागा जा रहा है। शाम का वक्त है, ठंडी-ठंडी हवा चल रही है और कभी कोई पहाड़ी कौआ अपने बड़े-बड़े परों को फैलाए और अपनी मोटी आवाज से दो-एक बार काँव-काँव करके ऊपर उड़कर चला जाता है। रजिया की खुशी का वार-पार नहीं है। वह जैसे हवाई जहाज में उड़ी जा रही है, फिर उसके सामने आया कि वह रजिया के लिए बहावलनगर की मंडी में खड़ा है। नन्हीं रजिया मानो भौंचक्की-सी है, हैरान और आश्चर्यान्वित-सी। कई ओर अनाज के इन बड़े-बड़े ढेरों,

अनगिन छकड़ों और हैरान कर देने वाली चीजों को देख रही है। बाकर साह्लाद उसे सबकी कैफियत दे रहा है। एक दुकान पर ग्रामोफोन बजने लगता है। बाकर रजिया को वहाँ ले जाता है। लकड़ी के इस डिब्बे से किस तरह गाना निकल रहा है, कौन इसमें छिपा गा रहा है—यह सब बातें रजिया की समझ में नहीं आतीं और यह सब जानने के लिए उसके मन में जो कौतूहल है, वह उसकी आँखों से टपका पड़ता है।

वह अपनी कल्पना में मस्त कार के पास से गुजरा जा रहा था कि अचानक कुछ खयाल आ जाने से वह रुका और कार में दाखिल हुआ।

मशीरमाल की कार भी कोई बड़ा गाँव न था। इधर के सब गाँव ऐसे ही हैं। ज्यादा हुए तो तीस छप्पर हो गए। कड़ियों की छत का या पक्की ईंटों का मकान इस इलाके में अभी नहीं। खुद बाकर की कार में पन्द्रह घर थे—घर क्या सुंगियाँ थीं। मशीर माल की कार ऐसी बीस-पच्चीस सुंगियों की बस्ती थी, केवल मशीरमाल का निवास स्थान कच्ची ईंटों से बना था, पर छत उस पर भी छप्पर की ही थी। नानक बढ़ई की सुंगी के सामने वह रुका। मण्डी जाने से पहले वह यहाँ डाची का गदरा (काठी) बनने के लिए दे गया था। उसे खयाल आया कि यदि रजिया ने साँडनी पर चढ़ने की जिद्द की तो वह उसे कैसे टाल सकेगा। इसी विचार से वह पीछे मुड़ आया था। उसने नानक को दो-एक आवाजें दीं, अन्दर से शायद उसकी पत्नी ने उत्तर दिया—'घर में नहीं हैं, मण्डी गये हैं।"

बाकर का दिल बैठ गया। वह क्या करे, यह न सोच सका, नानक यदि मण्डी गया है, तो गदरा क्या खाक बनाकर गया होगा, लेकिन फिर उसने सोचा—शायद बनाकर रख गया हो, इससे उसे कुछ सान्त्वना मिली। उसने फिर पूछा—"मैं साँडनी का पलान (गदरा) बनने के लिए दे गया था। वह बना या नहीं ?"

जवाब मिला—"हमें नहीं मालूम !"

बाकर का आधा उल्लास जाता रहा। बिना गद्दरे के वह डाची को क्या लेकर जाय। नानक होता तो उसका गद्दरा चाहे न बना सही, कोई दूसरा ही उससे माँगकर ले जाता। इस खयाल के आते ही उसने सोचा चलो मशीरमाल से माँग लें। उनके तो इतने ऊँट रहते हैं, कोई-न-कोई पुराना पलान होगा ही। अभी उसी से काम चला लेंगे, तब तक नानक गद्दरा तैयार कर देगा। यह सोचकर वह मशीरमाल के घर की ओर चल पड़ा।

अपनी मुलाजमत के दिनों में मशीरमाल महोदय ने काफी धन उपार्जित किया था। जब इधर नहर निकली तो उन्होंने अपने असर और रसूख से रियासत की जमीन ही में कौड़ियों के मोल कई मुरब्बे जमीन ले ली थी। अब रिटायर होकर यहीं आ रहे थे। राहक (मुजोर) रखे हुए थे, आय खूब थी और मजे से बसर हो रही थी। अपनी चौपाल में एक तख्तपोश पर बैठे वे हुक्का पी रहे थे—सिर पर सफेद साफा, गले में सफेद कमीज, उस पर सफेद जाकेट और कमर में दूध-जैसे रंग का तहमद। गर्द से अटे हुए, बाकर को साँडनी की रस्सी पकड़े आते देखकर उन्होंने पूछा—"कहो बाकर किधर से आ रहे हो?"

बाकर ने झुककर सलाम करते हुए कहा—"मण्डी से आ रहा हूँ मालिक।"

"यह डाची किसकी है?"

"मेरी है मालिक, अभी मण्डी से ला रहा हूँ?"

"कितने को लाये हो।"

बाकर ने चाहा, कह दे आठ बीसी को लाया हूँ, उसके खयाल में ऐसी सुन्दर डाची, दो सौ को भी सस्ती थी, पर मन न माना, बोला—"हजूर माँगता तो एक सौ साठ था पर सात बीसी ही में ले आया हूँ?"

मशीरमाल ने एक नजर डाची पर डाली। वे खुद देर से एक सुन्दर-सी डाची अपनी सवारी के लिए लेना चाहते थे। उनकी डाची थी तो, पर पिछले वर्ष उसे सीमन हो गया था और यद्यपि नील इत्यादि देने

से उसका रोग तो दूर हो गया था पर उसकी चाल में वह मस्ती, वह लचक न रही थी। यह उनकी नजरों में बस गई—क्या सुन्दर और सुडौल अंग है, क्या सफेदी मायल भूरा-भूरा रंग है। क्या लचलचाती लम्बी गर्दन है। बोले—"चलो हमसे आठ बीसी ले लो, हमें डाची की जरूरत है। दस तुम्हारी मेहनत के रहे।"

बाकर ने फीकी हँसी के साथ कहा—"हजूर अभी तो मेरा चाव भी पूरा नहीं हुआ।"

❀ ❀ ❀

मशीर माल उठकर डाची की गर्दन पर हाथ फेरने लगे—वाह क्या असील जानवर है? बोले—"चलो पाँच और ले लेना।"

और उन्होंने आवाज दी—"नूरे! अरे ओ नूरे!"

नौकर नौहरे में बैठा भैंसों के लिए पट्ठे कतर रहा था। गँडासा लिये ही भागा चला आया।

मशीरमाल ने कहा—"यह डाची ले जाकर बाँध दो! एक सौ पैंसठ रुपए में, कहो कैसी है?"

नूरे ने हत-बुद्धि-से खड़े बाकर के हाथ से रस्सी ले ली और नख से शिख तक एक नजर डाची पर डालकर बोला—"खूब जानवर है।" और कहकर नौहरे की ओर चल पड़ा।

तब मशीरमाल ने अंटी से साठ रुपए के नोट निकालकर बाकर के हाथ में देते हुए मुसकराकर कहा—"अभी एक गाहक देकर गया है, शायद तुम्हारी ही किस्मत के थे। अभी यह रखो, बाकी भी एक-दो महीने तक पहुँचा देंगे। हो सकता है तुम्हारी किस्मत से पहले ही आ जायं।" और बिना कोई जवाब सुने वे नौहरे की ओर चल पड़े।

नूरा फिर चारा कतरने लगा था। दूर ही से उसे आवाज देकर उन्होंने कहा—"भैंस का चारा रहने दो, पहले डाची के लिए गवारे को नीरा कर डालो, भूखी मालूम होती है।" और पास जाकर साँडनी की गर्दन सहलाने लगे।

कृष्ण पक्ष का चाँद अभी उदय नहीं हुआ था। विजन में चारों ओर कोहासा-सा छा रहा था। सिर पर दो-एक तारे निकल आए थे और दूर बबूल और ओंकाट के वृक्ष बड़े-बड़े काले सियाह धब्बे बन रहे थे। अपनी काट से जरा दूर फोग की एक झाड़ी के नीचे बाकर बैठा था, पशुओं के गले में बँधी हुई घंटियों की आवाज जैसे अनवरत क्रन्दन बनकर उसके कानों में आ रही थी। बाकर के हाथ में साठ रुपए के नोट बेपरवाही से लटक रहे थे और अपनी झोंपड़ी से आने वाली प्रकाश की क्षीण रेखा को निर्निमेष देखता हुआ वह इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि वह रेखा बुझ जाय, रज़िया सो जाय तो वह चुप चाप अपने घर में दाखिल हो

१२ : : श्रीमती होमवती देवी

माँ

(१)

बड़ा भोला-भाला, स्वस्थ और आकर्षक बालक था वह। आयु होगी लगभग दो-ढाई वर्ष की, जब उसकी माँ मरी थी। जिस समय कुन्तला की अर्थी सजाई जा रही थी, अनुराग कौतूहल से नौकर की गोद में चढ़ा देख रहा था। तभी दो-एक बड़े-बूढ़ों ने कहा—"इसे अलग ले जा रे, बच्चा है, जी में दहल जायगा।" और तब उसका नौकर सिरिया उसे कलेजे से चिपकाए दूर कुएँ की जगत पर बैठा आँसू बहाता रहा—"मालिकिन क्या थीं, देवी का सरूप और अन्नपूर्णा का मन पाया था। ऐसी क्या कोई सात जनम में भी मिल सकती है इन्हें। इतने बड़े घर की बेटी और मिज़ाज नाम को भी नहीं था।" सिरिया की बात के समर्थन में मेहतर ने सिर हिला दिया और फिर मृतक के कपड़े, खाट, बिस्तर आदि सहेजने में लग गया।

तेरह दिन तक घर में शोक का साम्राज्य बना रहा—विशेष रूप से तीन दिन तक अधिक रोना-पीटना चलता रहा। फिर क्रमशः वातावरण कुछ शान्त होने लगा। बहू की माँ, बहन, भावज सब छाती पीट-पीटकर थक गईं; पर जाने वाला क्या रुकता थोड़े ही है। सास, ससुर, ननद और नाते-रिश्ते के सभी अपना-अपना कर्तव्य

पालन करके चुप बैठ गए; किन्तु इससे क्या बना ? वह तो सदा के लिए चली गई—बच्चे से माँ बिछुड़ गई ।

बाबू कृपाशंकर के लिए तो एक क्या अनेक स्त्रियाँ थीं । स्त्री के मरने के साथ-ही-साथ रिश्ते आने लगे, बल्कि बहुत-से लड़की वालों ने तो उसकी बीमारी की हालत में ही निगाह ठहरा ली थी । जब तेरहवीं के ब्राह्मण जीम चुके, तभी कृपाशंकर के पिता ने लड़के की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"बहू क्या थी बेटा, लक्ष्मी थी; पर मरना-जीना तो अपने हाथ की बात नहीं । हमें ही देखो, तीन-तीन शादियाँ किये बैठे हैं— एक तुम्हारी माँ से पहले और एक बाद में । क्या किया जाय, हरी की इच्छा···। अब तुम सोच लो, किस लड़की को कितने नम्बर देते हो ।"

कृपाशंकर ने अनमने भाव से कहा—"अभी जल्दी ही क्या है, बाबूजी ! न-जाने बच्चे को कोई कैसे रखे ...।"

वे बोले—"बच्चे तो सब रहते ही हैं भाई ! आखिर तुम्हें भी तो किसी ने रखा ही था । तुम्हारी इतनी ही उम्र रही होगी बस, जब माँ मरी थी ।"

कृपाशंकर के सामने दो युग पीछे का संसार घूमने लगा । किस प्रकार उसे मार-मारकर कपड़े धोने के लिए बाध्य किया जाता था । पिता की आँखों में भी खून उतर आता था । उसे देख-देखकर कितनी शिकायतें प्रतिदिन सामने खड़ी खाती रहती थीं । उसे गिन-गिनकर रोटियाँ मिलती थीं खाने को । गिन-गिनकर कपड़े दिये जाते थे पहनने को । ··और तब उन्होंने सहसा कह दिया—"मैं शादी नहीं करूँगा ।'

पर बाबू बनवारीलाल पुराने मँजे हुए वकीलों में से थे । उनकी तीव्र दृष्टि संसार का कोना-कोना छाने हुए थी । लड़के को भी वकालत पास कराके उन्होंने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया था । यद्यपि परिवार तो छोटा ही था—दो जने स्वयं और दो ये लड़के कृपाशंकर और दयाशंकर—पर रुपया कमाने में वे इतने दक्ष थे कि कीचड़ से

भी पैसा निकाल लें। उन्होंने अथक परिश्रम करके अपने ही बाहु-बल से यह घर बनाया है। लड़के के मुख पर दृष्टि गड़ाकर वे बोले—"बावला हो गया है, कामिनी और कंचन का मोह तो बड़े-बड़े ऋषि भी नहीं छोड़ सके, भैया। हम-जैसों की क्या बात है? फिर कसूर-बिगाड़ पर अपनी माँ क्या डाटती-मारती नहीं है? अच्छी लड़की होगी, तो इसे अपने बच्चे के समान रखेगी। फिर हम पहले ही सब बातें ठहरा लेंगे। और हम तो मौजूद हैं। हमारे पास रहेगा यह। बस, तुम तय कर लो जल्दी, क्योंकि देर करने से रुला-खुला कूड़ा कचड़ा ही हाथ लगता है बस। देखो, भिक्का पंसारी की लड़की देखने में भी बुरी नहीं सुनते, और कहता है, शादी में कम-से-कम आठ-दस हज़ार रुपया ख़र्च करेगा। चाहे पाँच नक़द ही ले लो। दूसरा रिश्ता भट्ट वालों का भी अच्छा है। लड़की इसकी ज्यादा अच्छी सुनते हैं। कुछ पढ़ी-लिखी भी है। खानदान भी अच्छा है; पर देना-लेना तो ऐसा ही रहेगा। नाम बड़े और दर्शन थोड़े। छः बहनें हैं तय कर लो, फिर मुझे एक मुक़दमे के चक्कर में बाहर जाना है।···' यह कहकर बड़े वकील साहब बाहर चबूतरे पर टहलने लगे और छोटे वकील बाबू नई गृहस्थी की उलझन को सुलझाने में व्यस्त हो गए। तभी अनुराग ने आकर घर का कोना-कोना ढूँढ़ना शुरू कर दिया। शायद वह अपनी माँ की तलाश में था। फिर जहाँ रोगिणी का पलंग बिछा रहता था, वहाँ खड़ा होकर वह रो पड़ा—"अम्माँ····अम्माँ···!" बाबा ने गोदी में उठाकर उसे दुलारते हुए कहा—"अब तुम्हारी अम्माँ को जल्दी ही लाने की बात सोच रहे हैं, बेटा!"

(२)

महीना पूरा होते ही कृपाशंकर की माँ मिलाई ले आईं। वर ने दूसरी लड़की ज्यादा पसन्द की। पंसारी की लड़की तो ज़रा भी पसन्द नहीं आई। विवाह की तारीख़ तय हो गई। केवल आठ ही दिन शादी के रह गए। मृत्यु का सन्नाटा विवाह की धूम-धाम में बदल

गया। आस-पास के रिश्तेदारों को पत्र लिखे जाने लगे। घी, आटा, दाल, मैदा, मेवा, मिसरी आदि सामान जुटाने का प्रबन्ध होने लगा। कलावे भी रँगने को दे दिए गए, चूड़ियों के जोड़े बँधने लगे। पिछली बहू के ज़ेवर निखारने के लिए सुनार के यहाँ भेज दिए गए। आखिर वर की दूसरी शादी सही, पर कन्या को तो पहली ही ठहरी। गुड़िया-गुड्डों के विवाह में भी तो चार चीज़ें जुटानी ही पड़ती हैं।

कृपाशंकर की माँ दो-चार भारी साड़ियाँ और गहने दयाशंकर की बहू के लिए रोककर विवाह के काम में तन-मन से जुट गईं। "आज न सही, दस साल बाद छोटे का विवाह भी उन्हें करना ही है। इस महँगी के ज़माने में कौन इतना ज़ेवर-कपड़ा चढ़ाता है? फिर यह तो दूसरी शादी ठहरी।" यही सब दूर की बातें सोचकर लगन के चढ़ावे में भी इस बार उन्होंने दो के बजाय एक ही अँगूठी भेजने का निश्चय किया। कल लगन आयगा, परसों सामान जायगा और फिर बान-तेल-मढ़ा सब होगा। चाहे जो भी हो, सगुन के काम तो करने ही पड़ेंगे। मन-ही-मन हिसाब जोड़कर उन्होंने पति से सम्मति लेकर तय किया कि इस विवाह में ज्यादा-से-ज्यादा पाँच सौ रुपए ख़र्च करने चाहिएं, बस। लड़की वाले ने मिलाई में कुल मिलाकर साढ़े सात सौ रुपए नक़द और घड़ी, अँगूठी, बर्तन वग़ैरह दिये हैं। सगाई तो अच्छी ही करेगा। फिर बाद में कौन देता है? देना-लेना तो भाँवरें पड़ने से पहले तक ही रहता है, फिर तो सब लड़की वाले अँगूठा ही दिखाते हैं, इसलिए देख-भालकर ही खर्च करना चाहिए।

अनुराग के लिए भी नए कपड़े और जूतों का इन्तज़ाम करना था। वह बहुत खुश था। विवाह की चहल-पहल में जैसे उसका भी पुराना स्वप्न भंग होने लगा। जिस दिन कृपाशंकर को तेल चढ़ाया गया, वह भी चौकी पर आ बैठा और तेल चढवाने के लिए मचल उठा। दादी ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—"इसके ऊपर भी दो छींटे डालकर बहला दो, नहीं तो रो पड़ेगा और फिर चुप करना मुश्किल

हो जायगा।" सिरिया ने झट आकर उसे गोदी में उठा लिया। "आओ भइया, पतंग उड़ायंगे।" कहकर वह उसे छत पर ले गया। पर अनुराग को रट लगी थी—"हम भी कँगना बँधवायंगे।"

सिरिया के पास ही बैठी महरी मसाला साफ़ कर रही थी, बोली—"किसका ब्याह है, मुन्ना ?"

अनुराग ने तुरन्त उत्तर दिया—"बाबूजी का।"

पता नहीं, नीचे वालों ने बच्चे की बात सुनी या नहीं; पर ऊपर वाले स्तब्ध रह गए और तभी उनकी आँखों से आँसू टपक कर भू पर बिखर गए।

(२)

दीवार पर गेरू का थापा और उसके सामने जो मंगल-घट रखा गया था, उसी के सम्मुख वर-वधू को बैठाकर पूजन कराया जा रहा था और अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार आई-गई स्त्रियाँ न्योछावर करके माँ जी के हाथ पैसों से भरे दे रही थीं। कृपाशंकर की बाईं ओर बैठी सोलह साल की भामा नववधू के रूप में घूँघट में ही मुस्करा रही थी। रूप जैसे सँभाले सँभल नहीं रहा था। सभी ने उसके रूप की प्रशंसा की—"और चाहे जो हो, पर पहली बहू से देखने में अच्छी है।"

कृपाशंकर का मन भी अपनी परख पर फूल उठा। बोले—"खुद जो पसन्द की है मैंने।"

माँ ने अभिमान से कहा—"और वह बाप की पसन्द थी। आगे चलकर पता लगेगा कि किसकी पसन्द अच्छी रही। अब उस बेचारी का क्या ज़िक्र, आज पूरा सवा महीना हो गया···।"

प्रसंग को बदलता देखकर कृपाशंकर ने गठबन्धन का दुपट्टा कन्धे से उतारकर नीचे रख दिया। "अच्छा, अब मैं उठ जाऊँ न ?" कहते हुए वे उठने को उद्यत हुए। तभी नाते की एक भौजाई ने कहा—"अभी तो मुँह जूठा कराना है। ठहरो, भाग नहीं सकते···। बुरा न मानो

लालाजी, छोटे लाला के लिए भी तुमसे ही बहू पसन्द कराई जायगी। सचमुच सैकड़ों में एक है...।" अपने हाथ-पैरों पर एक गम्भीर दृष्टि डालते हुए युवती लड्डू-बताशे और पान लेने चली गई। फिर वातावरण में एक रंगीनी-सी छा गई। कृपाशंकर ने धीरे-से कहा—"तुम क्या बुरी हो?"

युवती ने तनिक संकोच के साथ देवर के सामने तश्तरी रख दी और बहू का भी हाथ थामकर तश्तरी में रख दिया। इतने ही में अनुराग की आवाज़ सुनाई दी—"बाबूजी, बाबूजी कहाँ हैं, हम बन्दर का तमाशा देखेंगे।" और आवाज़ के साथ ही वह भागा-भागा आकर कमरे में दाख़िल हो गया। वहाँ आते ही जैसे वह सब-कुछ भूलकर पिता से गज़-भर दूर खड़ा-का-खड़ा ही रह गया। दादी ने एक इकन्नी उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"जा, करा ले बन्दर का तमाशा...।" पर उसने जैसे उनकी बात ही नहीं सुनी, इकन्नी लेना तो दूर रहा।

बुआ ने उसे गोद में उठाकर पूछा—"तुमने बहू देखी, भैया?"

अनुराग ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—"नहीं।"

"देखोगे?"—बुआ ने फिर पूछा।

बालक ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

लड़की ने नई लड़की के घुटने पर उसे बैठाकर बहू का घूँघट थोड़ा ऊपर करते हुए कहा—"लो, देखो।"

अनुराग ने थोड़ा झुककर घूँघट में कुछ देख लिया और खड़ा हो गया। ताई ने पूछा—"यह किसकी बहू है, भइया?"

अनुराग ने सहसा उत्तर दिया—"बाबूजी की।"

सबके खिले हुए चेहरे उतर गए। वे न-जाने किस उत्तर की आशा में थे। कृपाशंकर भी उठ खड़े हुए और बच्चे की उँगली पकड़कर बोले—"चलो, बाहर बन्दर का तमाशा देखेंगे।"

लड़के की शादी करके बाबू बनवारीलाल ने जैसे गंगा नहा ली हो। उन्होंने वकालत छोड़कर कानपुर में ठेकेदारी का काम शुरू कर

दिया। वे छोटे लड़के को लेकर वहाँ चले गए। अनुराग को भी वे साथ ले जाना चाहते थे। पर फिर उन्होंने सोचा—यहाँ रहकर माँसे हिल-मिल जायगा, पास रहने से माँ की ममता भी इसमें होगी।

भामा ने आते ही घर-गृहस्थी सँभाली। अनुराग भी जैसे धीरे-धीरे सब-कुछ समझने की चेष्टा करने लगा। अब वह उतना हँसता नहीं और न पहले-जैसा शोर ही मचाता है। वह एकदम मानो साठ साल का बूढ़ा बन गया है—बहुत गम्भीर और शान्त। पड़ोस के जिन बच्चों में वह नित्य खेला करता था, अब कभी उनके पास जाता भी है, तो चुपचाप किवाड़ के पीछे या दीवार की ओट में दरवाज़े पर ही ठिठककर खड़ा रह जाता है। बहुत बुलाने पर कभी आ जाता है और कभी हफ़्तों घर से निकलता ही नहीं। अक़्सर उसके रोने की आवाज़ सुनकर मुहल्ले के बच्चे उसके घर के आगे जा खड़े होते हैं और उसे आवाज़ें लगाते हैं; पर जब से नई गृहिणी आई है, इस घर के अन्दर जाने की वे हिम्मत नहीं करते।

इसी प्रकार धीरे-धीरे दो वर्ष बीत गए। अचानक एक दिन सुना, वकील साहब के घर लड़का हुआ है, उसकी आज छठी है। ढोलक और मँजीरों की ध्वनि से सारा मुहल्ला गूँज उठा। कृपाशंकर के दोस्त दावत का तकाज़ा करने लगे, नाइन और कहारिन कड़ों की फरमाइश करने लगीं और महतरानी नई धोती के लिए झगड़ने लगी। जिसे देखो, वही उनके सिर था। पर कोई परेशानी की बात इसलिए सामने नहीं थी कि सभी चीज़ें महँगी होने के अलावा कण्ट्रोल के अन्तर्गत थीं। दावतें तो कभी की बन्द हो चुकी थीं। महँगा होने के अलावा कपड़ा मिलता ही नहीं था। खाना अपने ही पेट को काफ़ी नहीं मिलता, फिर किसी दूसरे को क्या ख़ाक खिलाया जाय ?

लेकिन इतना हेर-फेर अवश्य हो गया कि पड़ोस की दो-चार स्त्रियों का आना-जाना इस नए बच्चे के जन्म से शुरू हो गया। कभी-कभी कोई बच्चा भी जा खड़ा होता। अनुराग भी अब थोड़ा-थोड़ा घर से

निकलने लगा। फिर ऐसा हो गया कि दिन-दिन-भर घर जाता ही न था। कहीं किसी के घर खा लेता और खेलता रहता। शाम को जब कृपाशंकर के कचहरी से आने का समय होता, तब उसकी ढुँढ़ाई होती और नया नौकर टीका उसे खींच-तानकर कभी दूध पीने के बहाने और कभी अनार-सन्तरे या खरबूजे खाने का लालच दिखाकर घर ले जाता।

अब वह पूरे चार वर्ष का हो चुका था; पर बोलता अब भी बहुत कम था। उसकी गम्भीरता दिन-दिन बढ़ती जाती थी। जब कभी उसके कपड़े वगैरह बदले जाते, तब वह दुबला-पतला होने पर भी और सुन्दर लगने लगता था। उसे परिचित-अपरिचित सभी प्यार करते थे। सहानुभूति अमूल्य होने पर भी उसका मूल्य दीनता से बढ़कर क्या हो सकता है?

(४)

उस दिन होली का दिन था। अनुराग की अम्माँ ने सन्तोष की बुआ को बुलावा भेजा—"जरा कहानी सुनाकर तागा बँधवा देंगी।" वे पहले तो सोचती ही रह गईं—यह तीसरी होली है, इसने पिछले दो वर्षों से तागा क्यों नहीं बाँधा? आख़िर लड़का तो आगे था ही—अपना या पहली का। पर करती भी क्या? चली गईं। तब तक एक सँराई में आटा और गुड़ रखकर गृहिणी ने कच्चे सूत की पिंढ़िया उनके सामने रख दी। वे तागा पूरते-पूरते कहानी सुनाने लगीं—"एक राजा था। उसके नगर में ऐसा नियम था कि जब तक नर-बलि न चढ़ाई जाय, तब तक मिट्टी के बर्तनों का आवा पकता ही न था। उसी शहर में एक बुढ़िया रहती थी। उसके एक ही लड़का था। होली का व्रत रखकर उसने तागा बाँधा और पूजन किया। शाम को राजा के सिपाही आए और उसके लड़के को पकड़कर ले गए। अब की उसी की बारी थी। रोती-बिलखती बुढ़िया ने बेटे को विदा किया और जौ के दस दाने उसे देकर कहा—'जा, भगवान् मेरे इस कच्चे धागे की

लाज रखेंगे।' हमेशा आवा ६ महीने में उतारा जाता था और जिसे बर्तनों के साथ चिना जाता था, उसकी हड्डियाँ तक भस्म हो जाती थीं पर अब की बार तीन ही दिन में आवा पक गया और बुढ़िया का बेटा हँसता-कूदता आवे से बाहर निकल आया। नगर के लोगों में इसकी बड़ी चर्चा हुई कि बुढ़िया जादूगरनी है और जादू के ज़ोर से उसने अपने बच्चे को बचा लिया। बुढ़िया ने अपने होली के तागे और व्रत की महिमा का वर्णन करते हुए कहा—'नगर की सभी स्त्रियों को, जो लड़के की माँ हों यह तागा बाँधना चाहिए।' और तभी से यह रिवाज चला आ रहा है।"

कहानी पूरी करते हुए सन्तोष की बुआ ने कृपाशंकर की बहू से कहा—"तुमने पारसाल तो तागा बाँधा नहीं ?"

नई गृहिणी ने गोद के शिशु की ओर इशारा करते हुए कहा—"तब यह कहाँ था ?"

सन्तोष की बुआ को जैसे अब आगे कहने के लिए कोई बात नहीं रह गई थी। इतना स्पष्ट और सम्पूर्ण उत्तर पाकर वे खड़ी हो गईं। बहू ने उनके पैर छुए। उन्होंने 'सतपूती हो' कहकर घर का रास्ता लिया।

उसी रात अनुराग को बड़ा तेज़ बुखार चढ़ा और बुखार के साथ ही उसके प्रलाप की मात्रा भी बढ़ती गई। कृपाशंकर बड़ी परेशानी के साथ कभी उसकी नाड़ी टटोलते और कभी दिल की धड़कन देखते। डॉक्टर सावधानी से उसकी देख-भाल करने का आदेश दे और नुस्ख़ा लिखकर चले गए। नई माँ गोद के बच्चे को कलेजे से चिपकाए आँगन में खटोले पर पड़ी खर्राटे ले रही थी। अनुराग बराबर बक रहा था—"अरे···अ···यह देखो, किसने सिगरेट जला दी जाने ! मेरा कुर्त्ता जल गया···जल गया···जल गया !···बाबू जी, जल्दी आ जाओ···इक्का खड़ा है···मैं भी जाऊँगा।····"

यह सब सुनकर पड़ोसियों तक का दिल बैठा जा रहा था। कृपा-

शंकर ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"अनुराग, क्या बात है, बेटा? सो जाओ, तुमने तो परेशान कर रखा है!"

और अनुराग बराबर बकता जा रहा था—"अम्माँ...अम्माँ! मुझे गोदी में ले लो। वह देखो, तोता उड़ जायगा।...बन्द करो...बन्द करो। मैं नहाऊँगा। रोटी...रोटी...जल्दी...आओ...अम्माँ...अम्माँ!" कहते-कहते वह सहसा मौन हो गया।

कृपाशंकर ने उसका माथा छूकर देखा, पसीना आ रहा है, बुखार भी अब कम मालूम होता है। पर यह क्या? एकदम निढाल और निश्चल-सा हुआ जा रहा है अनुराग। पुरुष का हृदय भी कातर हो उठा। कृपाशंकर ने पलंग की पाटी पर अपना सिर दे मारा—"तुझे क्या हो गया, अनुराग!"

बच्चे के होंठ हिले—"अ...म्माँ...आँ...आँ...!"

कृपाशंकर ने आँगन में पड़ी गृहिणी को झकझोर कर कहा—"उठो, देखो तो अनुराग कब से अम्माँ-अम्माँ पुकार रहा है? अरे भामा, उसकी हालत बड़ी खराब होती जा रही है। तुम ज़रा उसे देखो। मैं डॉक्टर के यहाँ जाऊँ।"

पर युवती जैसे अपने भीने स्वप्नों को भंग नहीं करना चाहती थी। बोली—"सोने दो, मेरे पेट में बड़ा दर्द है।"

कृपाशंकर ठगे हुए-से स्तम्भित खड़े-खड़े सोच रहे थे—"माँ? माँ है यह? हाँ, अम्माँ। पर अनुरागी की नहीं।" और फिर सहसा उनकी आँखें युवती के पास पड़े हुए शिशु पर जाकर ठहर गईं!

१३ : : श्री रामचन्द्र तिवारी

पिशाची कारा

गाड़ी स्टेशन से सरकी, वृद्धा रामप्यारी का ध्यान बाहर गया। उसका हृदय धक-से हो गया। लंगूर के समान कोई प्लेटफार्म से उछलकर डिब्बे के द्वार पर लटक गया था। वृद्धा काँप उठी। गाड़ी ने गति पकड़ ली थी। यह मरे बिना न रहेगा।

उसने ध्यान से उसकी ओर देखा उसके बाल अस्त-व्यस्त, भद्दे और धूल-भरे थे। उन पर एक फुँदना-विहीन, दचकी-पिचकी गन्दी तीन छेदों वाली तुर्की टोपी जमाई हुई थी। वृद्धा चेष्टा करके भी उसका मुख न देख पाई। रेल की खटाखट ताल पर नाचती धूलि ने उसे छिपा लिया था। वृद्धा ने देखा—उसके हाथ की नसें तनी हैं।

उसे लगा कि वह अब गिरा, अब गिरा। वृद्धा ने कल्पना कर ली कि वह गिरकर रेल के नीचे आया और कट गया। उसका लाल-लाल रक्त चारों ओर फैल गया।

उससे रहा न गया। उसने डिब्बे में खड़े व्यक्तियों से कहा, "मर जायगा बिचारा, उसे भीतर ले लो।"

एक सेठ महोदय जो दो क्षण पहले भीतर आने के लिए गिड़गिड़ा रहे थे, बोले, "मरने दो साले को। रोकते-रोकते क्यों लटका इस डिब्बे से?"

बाबू बोले, "मरना था तो दूसरे डिब्बे से गिरकर मरता। यहाँ क्यों आया ?"

एक नैतिक सज्जन ने कहा, "निस्सन्देह उसके पास टिकट नहीं है। हमें ऐसे व्यक्ति के साथ कोई सहानुभूति नहीं होनी चाहिए।"

वृद्धा ने फिर विनती की, "भैया ले लो भीतर, बिचारा···।"

आराम से बैठे एक वृद्ध बोले, "हाँ ले लीजिए। हवा तेज़ चल रही है।"

"अजी साहब, इन्सानियत भी कोई चीज़ है—ग़रीब को भीतर ले लीजिए न।"

"आप लोग···।"

लालाजी तनिक दबे, सज्जन ने नीति को सरकाया और बाबू ने दिल में जगह की। उन्होंने पकड़कर उस व्यक्ति को भीतर खींच लिया। गाड़ी चालीस मील की गति से दौड़ रही थी।

वृद्धा की जान में जान आई। उसने देखा कि व्यक्ति नवयुवक है। होगा सोलह-सत्रह वर्ष का। उसका चेहरा लम्बा दुर्बल है। नेत्र का रंग नीलिमा लिये भूरा है। उसने कृतज्ञ दृष्टि से वृद्धा की ओर देखा, अपने गन्दे कपड़े समेट कोने में सिकुड़कर खड़ा हो गया। वृद्धा कुछ देर उसकी ओर देखती रही। उसने पकड़ी उसकी एक निरीह दृष्टि। युवा ने सलाम किया और फिर गाड़ी से बाहर देखने लगा। हवा जैसे क्रोध से पागल हो बौखलाई जा रही थी। वृक्ष पीछे खिसके जा रहे थे और रेल पटरी के जोड़ों को खटखटाती दौड़ी जा रही थी। यात्रियों ने डिब्बे के अन्तरंग को तम्बाकू की कालिमा से भर लिया था।

वृद्धा ने निश्चय किया कि बालक के नयन चंचल हैं। उनमें एक चमक है। यही था जो अभी नीचे गिरकर कट जाता। वह एक बार फिर काँप उठी।

गाड़ी रुकी। वृद्धा के पास कुछ सामान था। युवक सामान उतारने में सहायता देता हुआ उसके साथ उतर गया।

गाड़ी ने सीटी देकर आगे जाने की उत्सुकता दिखाई। वृद्धा ने कहा, "तुम जाओ, गाड़ी चल दी है।"

नवयुवक ने सूचना दी कि उसे आगे नहीं जाना।

वृद्धा ने कुली को पुकारा। वह वहाँ से चला गया।

स्टेशन के बाहर जब वृद्धा सामान घर तक पहुँचा देने के लिए एक कुली से मजूरी तय कर रही थी तो वही नवयुवक फिर आ पहुँचा। बोला, "बड़ी बी, आप फिक्र न कीजिये। जहाँ चलना है मैं लिये चलता हूँ।"

कुली ने बेधक दृष्टि से इस गन्दे दुर्बल युवक की ओर देखा।

वृद्धा बोली, "नीलधर चलना है, क्या लोगे?"

"मैंने नीलधर देखा नहीं। आप चलिये मैं पहुँचा दूँगा।"

"नहीं बेटा, पहले बता दो क्या लोगे? पीछे झगड़ा···।"

"आप बेफिक्र रहिये। मैं बिलकुल झगड़ा न करूँगा जो आप दे देंगी, ले लूँगा।"

वृद्धा को पूर्ण विश्वास न हुआ। पर उसने सामान उठा लेने दिया, सामान उठाकर उसने एक बार पुनः विश्वास दिलाया, "आप घबराइये नहीं, मैं बिलकुल झगड़ा नहीं करूँगा।"

टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में होती वृद्धा अपने घर पहुँची। पड़ोसिन ने पूछा, "आज ही आ गईं अम्मा तुम?"

"हाँ बेटी।"

"लाओ परांठे मैं सेक दूँ। तुम अब क्या चूल्हा सुलगाओगी?"

"बेटी, मैं बनाकर रख गई थी।"

"काम ठीक हो गया?"

"हाँ।"

और वृद्धा ने सामान उतरवाया, बटुआ खोला। दो आने पैसे निकालकर नवयुवक को दिये।

युवक ने कहा, "बड़ी बी, मैं नहीं लूँगा पैसे।"

वृद्धा का चेहरा फक हो गया। बोली, "मैं तो पहले ही कहती थी कि तय कर ले यहीं। वहाँ न झगड़ना। अच्छा ले एक पैसा और ले।"

नवयुवक उसके मुख की ओर देखता रहा। बोला, "बड़ी बी, मैं पैसे बिलकुल नहीं लूँगा, मैंने आपका सामान यहाँ तक पहुँचा दिया है। मजूरी नहीं की है।"

वृद्धा की समझ में स्थिति आई। उसका चेहरा खिल उठा। युवक सलाम करके लौट चला।

वृद्धा ने पुकारा, "बेटा, सुनना जरा।"

युवक घूमा। "तेरा नाम क्या है?"

"अब्दुल हमीद।"

वृद्धा ने एक दृष्टि से उसके नयनों में देखा। बोली, "बेटा हमीद, तू पैसे नहीं लेता तो न सही। ले दो रोटी खा ले, भूखा होगा।"

उसने कहा, "रहने दीजिए बड़ी बी। आप तकलीफ न कीजिये।" और उसका कण्ठ भर आया। वृद्धा को लगा कि उसे दो नहीं अधिक रोटियों की आवश्यकता है।

हाथ धोकर हमीद भोजन करने बैठा। रोटी पर दाल रखकर वृद्धा ने उसे रोटी दे दी। जब वह खाने लगा तो वृद्धा एकटक उसकी ओर देखने लगी। युवक के प्रति एक आत्मीयता उसमें उमड़ी उसने मुख तक उठते उसके हाथ को देखा। अधरों की आकृति को परखा और फिर भोजन को कण्ठ के नीचे उतरते हुए देखा।

उससे रहा न गया, पूछा, "बेटा तेरा घर कहाँ है?"

युवक ने वृद्धा की ओर देखा, बोला, "कहीं भी नहीं, बड़ी बी, ऐसे ही इधर-उधर घूमता-फिरता हूँ।"

"क्यों बेटा, तेरे माँ-बाप? कहाँ हैं! क्या करते हैं?"

पूछ चुकने के पश्चात् वृद्धा को लगा कि उसने यह प्रश्न ठीक नहीं किया। इसने युवक के भोजन में विघ्न डाला है। वह दुखित हो गया है। वह शीघ्रता से बोली, "बेटा, खाने को खा ले। मैं पानी लाऊँ।"

वह उठी। एक मटकैने में पानी लाकर हमीद के सामने रख दिया।

अब्दुल हमीद ने पानी का एक घूँट पिया। कुछ देर ठहरकर बोला, "बड़ी बी, माँ-बाप नहीं हैं।" और फिर एक बड़ा-सा कौर मुँह में ठूँस लिया।

वृद्धा की वह कोठरी सीली थी। सूर्य की किरणें वहाँ कभी न पहुँच पाती थीं। उसे अनुभव हुआ कि अब वहाँ प्रकाश और भी कम हो गया है।

हमीद ने कहा, "माँ तो जब मैं दो बरस का था तभी मर गई थी। वालिद थे। उन्होंने ही मुझे पाला। उन्हें भी पारसाल हिन्दुओं ने मार डाला।"

वह भूल गया था कि वह एक हिन्दू के घर में बैठा यह बात कर रहा है। वृद्धा सन्न रह गई। हिन्दू भी किसी को मार सकते हैं? उसे विश्वास न हुआ। उसका अविश्वास हमीद ने पढ़ लिया। बोला, "बड़ी बी, इन्सान के बराबर शैतान कोई नहीं और देवता भी कोई नहीं। वे थे दंगे के दिन। हम लोग काँप-काँप उठते थे। दोनों तरफ खून-पर-खून हो रहे थे। एक दिन कुछ हिन्दू हथियार लिये हमारे मकान पर चढ़ आए। वालिद ने मुझे घास के नीचे छिपा दिया और खुद उनके सामने चले गए। उन्होंने जिन्दगी की भीख माँगनी चाही पर जालिमों ने मौका ही न दिया। मैं जब खून से रँगी उनकी याद करता हूँ तो···। कितना प्यारा चेहरा था।"

और वृद्धा ने देखा कि लड़के की आँखें लाल हो आई हैं। उसके नयनों से आँसू कपोलों पर ढुलक आये हैं।

वृद्धा बोली, "हिन्दुओं को क्या मिला एक निरपराध को मारकर!"

"अल्ला ही जाने।"

युवक को अपने पिता की याद आई। वह कहता गया, "अब्बा मुझे बहुत प्यार करते थे। वे महाभारत की कहानियाँ सुनाते थे, बहुत

प्यारी-प्यारी कहानियाँ थीं। करन की कहानी....।"

वृद्धा ने रुचिपूर्ण शंका की, "क्या मुसलमान भी महाभारत को मानते हैं ?"

"नहीं बड़ी बी। मेरे अब्बा पहले हिन्दू थे। उनके माँ-बाप को बहुत दिन पहले मुसलमानों ने एक दंगे में मार डाला था। वे भागकर बचे थे, पर मुसलमान बना लिये गए थे।"

"कहाँ के रहने वाले थे उनके माँ-बाप !"

"इसी शहर के।"

"क्या तुझे अपने बाप का नाम याद है ?"

"हाँ अब्दुल लतीफ।"

"नहीं, हिन्दू नाम !"

"ठीक नहीं कह सकता। क्योंकि उसकी जरूरत नहीं पड़ती थी। कभी-कभी चर्चा चलती थी। शायद वह मनोहरलाल था।"

अब्दुल हमीद यकायक रुक गया। उसने वृद्धा की ओर देखा।

"क्या हुआ बड़ी बी ! तबियत...!"

"कुछ नहीं बेटा। और रोटी लाऊँ तेरे लिए ? पेट भर खा ले मेरे लाल !"

और वह आँसू पोंछती उठ गई। रोटी लाकर उसे देने लगी।

"नहीं अम्मा, मैं अब नहीं खाऊँगा।"

वह उठ खड़ा हुआ। वृद्धा एकटक उसकी ओर देख रही थी। वह उसके ललाट, उसकी भृकुटि, उसके नयनों, नासिका और अधरों की परीक्षा करती जा रही थी और निश्चय करती जा रही थी कि यही है, वह यही है। उसकी दृष्टि उस पर से हटी नहीं।

अब्दुल हमीद घर से बाहर गली में, संसार में फिर खो जाने के लिए लौटा जा रहा था और वृद्धा रामप्यारी किवाड़ पकड़े आँसू बहाती उसकी ओर ताक रही थी। पर कोई पिशाची शक्ति थी जो उसे चिल्लाकर कहने न देती थी कि ओ अब्दुल हमीद ! ठहर जा। ओ मेरे लाल

लौट आ तू कहाँ जा रहा है ! मुझे देख मैं रामप्यारी बूढ़ी रामप्यारी, तेरी दादी हूँ। मैं यहाँ खड़ी हूँ। तू मेरी आत्मा का टुकड़ा है। मेरे रक्त का रक्त है, लौट आ ! अरे लौट आ ! तेरे पिता के लिए रोते-रोते मेरे नयनों का पानी सूख गया है। अब तू भी न रुला ओ अब्दुल हमीद, ओ अब्दुल हमीद लौट आ, लौट आ। देख, मुझे पहचान ले मैं तेरी दादी हूँ। ओ...।

पर उसकी जीभ न हिली। कण्ठ में स्वर फँसकर रह गया। वह काँपी और लड़खड़ाकर फर्श पर गिर पड़ी।

मेरा वतन

उसने सदा की भाँति तहमद लगा लिया था और फैज ओढ़ ली थी। उसका मन कभी-कभी साइकल के ब्रेक की तरह तेजी से झटका देता था परन्तु पैर यन्त्रवत् आगे बढ़ते चले जाते थे। यद्यपि इस शक्ति-प्रयोग के कारण वह बे-तरह काँप उठता था, पर उसकी गति पर अंकुश नहीं लगता था। देखने वालों के लिए वह एक अर्द्ध विक्षिप्त से अधिक समझदार नहीं था। वे अक्सर उसका मजाक उड़ाना चाहते थे। वे कहकहे लगाते और ऊँचे स्वर में गालियाँ पुकारते; पर जैसे ही उसकी दृष्टि उठती—न जाने उन निरीह, भावहीन, फटी-फटी आँखों में क्या होता था—वे सहम जाते; सोडा वाटर के तूफान की तरह उठने वाले कहकहे मर जाते और वह नजर दिल की अन्दरूनी बस्ती को शोले की तरह सुलगाती हुई फिर नीचे झुक जाती। वे फुसफुसाते—'ज़रूर इसका सब-कुछ लुट गया है'...'इसके रिश्तेदार मारे गए हैं'...'नहीं, नहीं, ऐसा लगता है कि काफिरों ने इसके बच्चों को इसी के सामने आग में भून दिया है या भालों की नोक पर टिकाकर तब तक घुमाया है जब तक उनकी चीख-पुकार बिल्ली की मिमियाहट से चिड़िया के बच्चे की चीं-चीं में पलटती हुई खत्म नहीं हो गई है।'

'और यह सब देखता रहा है।'

'हाँ ! यह देखता रहा है । वही खौफ़ इसकी आँखों में उतर आया है । उसी खौफ़ ने इसके रोम-रोम को जकड़ लिया है । वह खौफ इसके लहू में इतना घुल-मिल गया है कि इसे देखकर डर लगता है ।'

'डर'—किसी ने कहा था—'इसकी आँखों में मौत की तसवीर है, वह मौत; जो कत्ल, खूँरेजी और फाँसी का निजाम सँभालती है ।'

एक बार एक राह-चलते दर्दमन्द ने एक दूकानदार से पूछा—"यह कौन है ?"

दूकानदार ने जवाब दिया—"मुसीबतजदा है, जनाब । अमृतसर में रहता था । काफिरों ने सब-कुछ लूटकर इसके बीवी-बच्चों को आग में फूँक दिया ।"

"जिन्दा"—राहगीर के मुँह से अचानक निकल गया ।

दूकानदार हँसा—"जनाब किस दुनिया में रहते हैं । वह दिन बीत गए जब आग काफिरों के मुरदों को जलाती थी । अब तो वह जिन्दों को जलाती है ।"

राहगीर ने तब कड़वी भाषा में काफिरों को वह सुनाई कि दुकान-दार ने खुश होकर उसे बैठ जाने के लिए कहा । उसे जाने की जल्दी थी फिर भी जरा-सा बैठकर उसने कहा—"कोई बड़ा आदमी जान पड़ता है ।"

"जी हाँ ! वकील था, हाईकोर्ट का बड़ा वकील । लाखों रुपयों की जायदाद छोड़ आया है ।"

"अच्छा जी ।"

"जनाब ! क्या पूछते हैं ? आदमी आसानी से पागल नहीं होता । दिल पर चोट लगती है तभी वह टूटता है । पर जब एक बार टूट जाता है तो फिर नहीं जुड़ता । आजकल चारों तरफ यही कहानी है । मेरा घर का मकान नहीं था, लेकिन दूकान में सामान इतना था कि तीन मकान बन सकते थे ।"

"जी हाँ"—राहगीर ने सदय होकर कहा—"आप ठीक कहते हैं पर

आपके बाल-बच्चे तो ठीक आ गए हैं।"

"जी हाँ! खुदा का फजल है। मैंने उन्हें पहले ही भेज दिया था। जो पीछे रह गए थे उनकी न पूछिए। रोना आता है। खुदा गारत करे हिन्दुस्तान को....।"

राहगीर उठा। उसने बात काटकर इतना ही कहा—"देख लेना एक दिन वह गारत होकर रहेगा। खुदा के घर में देर है पर अन्धेर नहीं।"

और वह चला गया परन्तु उस अर्द्ध-विक्षिप्त के क्रम में कोई अन्तर नहीं पड़ा। वह उसी तरह धीरे-धीरे बाजारों में से गुजरता, शरणार्थियों की भीड़ में धक्के खाता, परन्तु उस ओर देखता नहीं। उसकी दृष्टि तो आस-पास की दूकानों और मकानों पर जा अटकती थी। अटकती ही नहीं, चिपक जाती थी। मिकनातीस लोहे को खींच लेती है वैसे ही वे बेजबाँ इमारतें, जो जगह-जगह पर खण्डहर की शक्ल में पलट चुकी थीं, उसकी नज़र और नज़र के साथ उसके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सभी को अपनी ओर खींच लेती थीं और फिर उसे जो-कुछ याद आता, वह उसे, पैर के तलुए से होकर सिर में निकल जाने वाली सूली की तरह काटता हुआ, उसके दिल के कोने में जा बैठता था। इसी कारण वह आज तक मर नहीं सका था; केवल सिसकियाँ भरता रहता था, वे सिसकियाँ जिनमें न शब्द थे न आँसू। वे सूखी हिचकियों की तरह उसे बे-जान किये हुए थीं।

सहसा उसने देखा—सामने उसका अपना मकान आ गया है। उसके अपने दादा ने उसे बनाया था। उसके ऊपर के कमरे में उसके पिता का जन्म हुआ था। उसी कमरे में उसने आँखें खोली थीं और उसी कमरे में उसके बच्चों ने पहली बार प्रकाश-किरण का स्पर्श पाया था। उस मकान के कण-कण में उसके जीवन का इतिहास अङ्कित था। उसे फिर बहुत-सी कहानियाँ याद आने लगीं। वह तब उन कहानियों में इतना डूब गया था कि उसे परिस्थिति का तनिक भी

ध्यान नहीं रहा। वह जीने पर चढ़ने के लिए आगे बढ़ा और जैसा कि वह सदा करता था उसने घण्टी पर हाथ डाला। बे-जान घण्टी शोर मचाने लगी और तभी उसकी नींद टूट गई। उसने अपने चारों ओर देखा। वहाँ सब एक ही तरह के आदमी नहीं थे। वे सब एक ही जबान नहीं बोलते थे। फिर भी उनमें ऐसा कुछ था जो उन्हें एक कर रहा था और वह इस एके में अपने लिए कोई जगह नहीं पाता था। उसने तेजी से आगे बढ़ जाना चाहा, पर तभी ऊपर से एक व्यक्ति उतर आया। उसने ढीला पाजामा और कुरता पहना था, पूछा—"कहिए जनाब ?"

वह अकचकाया—"जी !"

"जनाब किसे पूछते थे ?"

"जी, मैं पूछता था कि मकान खाली है !"

ढीले पाजामे वाले व्यक्ति ने उसे ऐसे देखा कि जैसे वह कोई चोर या उठाईगीरा हो। फिर मुँह बनाकर तसल्ली से जवाब दिया—"जनाब ! तशरीफ ले जाइए वरना,,.... आगे उसने क्या कहा वह यह सुनने के लिए नहीं रुका, बढ़ा चला गया। उसकी गति में तूफान भर उठा, उसके मस्तिष्क में बवंडर उठ खड़ा हुआ और उसका चिन्तन गति की चट्टान पर टकराकर पाश-पाश हो गया। उसे जब होश आया तो वह अनारकली से लेकर माल तक का समूचा बाजार लाँघ चुका था। वह बहुत दूर निकल गया था। यहाँ आकर वह काँपा। एक टीस ने उसे कुरेद डाला जैसे बढ़ई ने पेच में पेचकश डालकर पूरी शक्ति के साथ उसे घुमाना शुरू कर दिया हो। हाईकोर्ट की शानदार इमारत उसके सामने थी। वह दृष्टि गड़ाकर उसके कंगूरों को देखने लगा। उसने बरामदे की कल्पना की। उसे याद आया—वह कहाँ बैठता था, वह कौन-से कपड़े पहनता था कि उसका हाथ सिर पर गया जैसे उसने साँप को छुआ। उसने उसी क्षण हाथ खींच लिया पर मोहक स्वप्नों ने उसकी रंगीन दुनिया की रंगीनी को उसी तरह बनाये रखा। वह तब इस

दुनिया में इतना डूब चुका था कि बाहर की जो वास्तविक दुनिया है वह उसके लिए मृगतृष्णा बन गई थी। उसने अपने पैरों के नीचे की धरती को ध्यान से देखा, देखता रहा। सिनेमा की तसवीरों की तरह अतीत की एक दुनिया, एक शानदार दुनिया उसके अन्तस्तल पर उतर आई। वह इसी धरती पर चला करता था। उसके आगे- पीछे उसे नमस्कार करते, सलाम झुकाते, बहुत-से आदमी आते और जाते थे। दूसरे वकील हाथ मिलाकर शिष्टाचार प्रदर्शित करते और...

विचारों के हनुमान ने समुद्र पार करने के लिए छलाँग लगाई—उसका ध्यान जज के कमरे में जा पहुँचा। जब वह अपने केस में बहस शुरू करता था तो कमरे में सन्नाटा छा जाता था। केवल उसकी वाणी की प्रतिध्वनि गूँजा करती थी, केवल 'मी लार्ड' शब्द बार-बार उठता और 'मी लार्ड' कलम रखकर उसकी बात सुनते....

हनुमान फिर कूदे और वह अब बार-एसोसिएशन के कमरे में आ गया था। इसमें न जाने कितने कहकहे उसने लगाए थे, कितनी बार राजनीति पर उत्तेजित कर देने वाली बहसें की थीं, वहीं बैठकर उसने महापुरुषों को अनेक बार श्रद्धांजलियाँ भेंट की थीं और विदा और स्वागत के खेल खेले थे।

वह अब उस कुर्सी के बारे में सोचने लगा जिस पर वह बैठा करता था। तब उसे कमरे की दीवारों के साथ-साथ दरवाजे के पायदान की याद भी आ गई और वह पायदान को देखने के लिए आतुर हो उठा। वह सब-कुछ भूलकर सदा की तरह झूमता हुआ आगे बढ़ा, पर तभी जैसे किसी ने उसे कचोट लिया। उसने देखा कि लॉन की हरी घास मिट्टी में समा गई है। रास्ते बन्द हैं, केवल डरावनी आँखों वाले सैनिक मशीनगन सँभाले, हैलमैट पहने तैयार खड़े हैं कि कोई आगे बढ़े और वे शूट कर दें। उसने हरी वर्दी वाले होमगार्डों को भी देखा और देखा कि राइफल थामे पठान लोग जब मन में उठता है फायर कर देते हैं। वे मानो छड़ी के स्थान पर राइफल का प्रयोग करते हैं और उनके

लिए जीवन की पवित्रता बन्दूक की गोली की सफलता पर निर्भर करती है। उसे स्वयं जीवन की पवित्रता से अधिक मोह नहीं था। वह खंडहरों के लिए आँसू भी नहीं बहाता था। उसने अग्नि की प्रज्वलित लपटों को अपनी आँखों से उठते देखा था। उसे तब खाण्डव-वन की याद आ गई थी, जिसकी नींव पर इन्द्रप्रस्थ-सरीखे वैभवशाली और कलामय नगर का निर्माण हुआ था। तो क्या इस महानाश की नींव पर भी किसी गौरव-गरिमामय-कलाकृति का निर्माण होगा। इन्द्रप्रस्थ की उस कला के कारण महाभारत सम्भव हुआ, जिसने इस अभागे देश के मदोन्मत्त किन्तु जर्जरित शौर्य को सदा के लिए समाप्त कर दिया। क्या आज फिर वही कहानी दोहराई जाने वाली है।

एक दिन उसने अपने बड़े बेटे से कहा था—'जिन्दगी न जाने क्या-क्या खेल खेलती है। वह तो बहुरूपिया है, पर दूसरी दुनिया बनाते हमें देर नहीं लगती। परमात्मा ने मिट्टी इसलिए बनाई है कि हम उसमें से सोना पैदा करें।'

बेटा बाप का सच्चा उत्तराधिकारी था। उसने परिवार को एक छोटे-से कस्बे में छोड़ा और आप आगे बढ़ गया। वह अपनी उजड़ी हुई दुनिया को फिर से बसा लेना चाहता था, पर तभी अचानक छोटे भाई का तार मिला। लिखा था—'पिताजी न जाने कहाँ चले गए।'

तार पढ़कर बड़ा भाई अचरज से काँप उठा। वह घर लौटा और पिता की खोज करने लगा। उसने मित्रों को लिखा, रेडियो पर समाचार भेजे अखबारों में विज्ञापन निकलवाए। सब-कुछ किया, पर वह यह नहीं समझ सका, कि आखिर वे कहाँ गये और क्यों गए। वह इसी उधेड़-बुन में था कि एक दिन सबेरे-सबेरे देखा—वे चले आ रहे हैं शान्त, निर्द्वन्द्व और निर्मुक्त।

"आप कहाँ चले गए थे?" प्रथम भावोद्रेक समाप्त होने पर पुत्र ने पूछा।

शान्त मन से पिता ने उत्तर दिया—"लाहौर।"

"लाहौर"—पुत्र हठात् काँप उठा—"आप लाहौर गये थे ?"

"हाँ।"

"कैसे ?"

पिता बोले—"रेल में बैठकर गया था, रेल में बैठकर आया हूँ।"

"पर आप वहाँ क्यों गये थे ?"

"क्यों गया था"—जैसे उसकी नींद टूटी। उसने अपने-आपको सँभालते हुए कहा—"वैसे ही, देखने के लिए चला गया था।"

और आगे की बहस से बचने के लिए वह उठकर चला गया। उसके बाद उसने इस बारे में किसी भी प्रश्न का जवाब देने से इन्कार कर दिया। उसके पुत्रों ने पिता के इस परिवर्तन को देखा, पर न तो वे उन्हें समझा सकते थे, न उन पर क्रोध कर सकते थे; क्योंकि वे दुनिया के दूसरे काम सदा की भांति करते रहते थे। हाँ, पंजाब की बात चलती तो आह भरकर कह देते थे—"गया पंजाब! पंजाब अब कहाँ है ?" पुत्र फिर काम पर लौट गए और वे भी घर की व्यवस्था करने लगे। इसी बीच में वे एक दिन फिर लाहौर चले गए, परन्तु इससे पहले कि उनके पुत्र इस बात को जान सकें, वे लौट भी आए। पत्नी ने पूछा—"आखिर क्या बात है ?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं कैसे ? आखिर आप वहाँ क्यों जाते हैं ?"

तब कई क्षण चुप रहने के बाद उन्होंने धीरे-से कहा—"क्यों जाता हूँ, क्योंकि वह मेरा वतन है। मैं वहाँ पैदा हुआ हूँ। वहाँ की मिट्टी में मेरी जिन्दगी का राज छिपा है। वहाँ की हवा में मेरे जीवन की कहानी लिखी हुई है।"

पत्नी की आँखें भर आईं, बोली—"पर अब क्या, अब तो सब-कुछ गया।"

"हाँ, सब-कुछ गया।" उन्होंने कहा—"मैं जानता हूँ अब कुछ नहीं हो सकता पर न जाने क्या होता है, उसकी याद आते ही मैं अपने-

आपको भूल जाता हूँ और मेरा वतन मिक़नातीस की तरह मुझे अपनी ओर खींच लेता है।" उनकी आँखें भर आईं।

करुण स्वर में पत्नी ने कहा—"नहीं, नहीं आपको अपने-मन को सँभालना चाहिए। जो-कुछ चला गया उसका दुःख तो जिन्दगी-भर सालता रहेगा। भाग्य में यही लिखा था, पर अब जान-बूझकर आग में कूदने से क्या लाभ?"

"हाँ, अब तो जो-कुछ बचा है उसी को सहेजकर गाड़ी खींचनी ठीक है"—उसने पत्नी से कहा और फिर जी-जान से नये कार्य-क्षेत्र में जुट गया। उसने फिर वकालत का चोगा पहन लिया। उसका नाम फिर बार-एसोसिएशन में गूँजने लगा। उसने अपनी जिन्दगी को भूलने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। और शीघ्र ही वह अपने काम में इतना डूब गया कि देखने वाले दाँतों के तले उँगली दबाकर कहने लगे—"इन लोगों में कितना जीवट है। सहस्रों वर्षों में अनेक पीढ़ियों ने अपने को खपाकर जिस दुनिया का निर्माण किया था वह क्षण-भर में राख का ढेर हो गई, तो बिना आँसू बहाए उसी तरह की दुनिया, ये लोग क्षणों में ही बना देना चाहते हैं।"

उनका अचरज ठीक था। तम्बुओं और कैम्पों के आस-पास, सड़कों के किनारे, राह से दूर भूत-प्रेतों के चिर परिचित अड्डों में, उजड़े गाँवों में, खोले और खादर में, जहाँ भी मनुष्य की शक्ति कुण्ठित हो चुकी थी, वहीं ये लोग पहुँच जाते थे। और पादरी के नास्तिक मित्र की तरह नरक को स्वर्ग में बदल देते थे। उन लोगों ने जैसे कसम खाई थी कि धरती असीम है, शक्ति असीम है फिर निराशा कहाँ रह सकती है।

ठीक उसी समय जब उसका बड़ा पुत्र अपनी नई दूकान का मुहूर्त करने वाला था उसे एक बार फिर छोटे भाई का तार मिला—'पिताजी पाँच दिन से ला पता हैं।' पढ़कर वह क्रुद्ध हो उठा और तार के टुकड़े-टुकड़े करके उसने दूर फेंक दिए। और चिनचिनाया—'वे नहीं

मानते तो उन्हें अपने किये का फल भोगना चाहिए। वे अवश्य लाहौर गये हैं।' उसका अनुमान सच था। जिस समय वे इस प्रकार चिन्तित हो रहे थे उसी समय लाहौर के एक दूकानदार ने एक अर्द्ध-विक्षिप्त व्यक्ति को, जो तहमद लगाए, फैज कैप ओढ़े, फटी-फटी आँखों से चारों ओर देखता हुआ घूम रहा था, पुकारा—"शेख साहब! सुनिए तो। बहुत दिन में दिखाई दिए, कहाँ चले गए थे?"

उस अर्द्ध-विक्षिप्त पुरुष ने थकी हुई आवाज में जवाब दिया—"मैं अमृतसर चला गया था।"

"क्या"—दूकानदार ने आँखें फाड़कर कहा—"अमृतसर!"

"हाँ, अमृतसर गया था। अमृतसर मेरा वतन है।"

दूकानदार की आँखें क्रोध से चमक उठीं, बोला—"मैं जानता हूँ। अमृतसर में साढ़े तीन लाख मुसलमान रहते थे पर आज एक भी नहीं है।

"हाँ", उसने कहा—"वहाँ आज एक भी मुसलमान नहीं हैं।"

"काफिरों ने सबको भगा दिया, पर हमने भी कसर नहीं छोड़ी। आज लाहौर में एक भी हिन्दू या सिख नहीं है और कभी होगा भी नहीं।"

वह हँसा, उसकी आँखें चमकने लगीं। उनमें एक ऐसा रंग भर उठा जो बे-रंग था और वह हँसता चला गया, हँसता चला गया—"वतन, धरती, मोहब्बत, सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं—सबसे बड़ा मजहब है, दीन है, खुदा का दीन। जिस धरती पर खुदा का बन्दा रहता है, जिस धरती पर खुदा का नाम लिया जाता है, वह मेरा वतन है, वही मेरी धरती है और वही मेरी मोहब्बत है।"

दूकानदार ने धीरे-से अपने दूसरे साथी से कहा—"आदमी जब होश खो बैठता है, तो कितनी सच्ची बात कहता है।"

साथी ने जवाब दिया—"जनाब! तब उसकी जबान से खुदा बोलता है।"

"बेशक"—उसने कहा और मुड़कर उस अर्द्ध-विक्षिप्त से बोला—शेख साहब ! आपको घर मिला ?"

"सब मेरे ही घर हैं।"

दूकानदार मुस्कराया—"लेकिन शेख साहब ! जरा बैठिए तो, अमृतसर में किसी ने आपको पहचाना नहीं।"

वह ठहाका मारकर हँसा—"तीन महीने जेल में रहकर लौटा हूँ।"

"सच।"

"हाँ, हाँ"—उसने आँखें मटकाकर कहा।

"तुम जीवट के आदमी हो।"

और तब दूकानदार ने खुश होकर उसे रोटी और कबाब मँगाकर दिया। लापरवाही से उन्हें पल्ले में बाँधकर और एक टुकड़े को चबाता हुआ वह आगे बढ़ गया।

दूकानदार ने कहा—"अजीब आदमी है। किसी दिन लखपति था, आज फाकामस्त है।"

"खुदा अपने बन्दों का खूब इम्तहान लेता है।"

"जन्नत ऐसे को ही मिलता है।"

"जी हाँ। हिम्मत भी खूब है। जान-बूझकर आग में जा कूदा।"

"वतन की याद ऐसी ही होती है", उसके साथी ने, जो दिल्ली का रहने वाला था कहा, "अब भी जब मुझे दिल्ली की याद आती है तो दिल भर आता है।"

और वह आगे बढ़ रहा था। माल पर भीड़ बढ़ रही थी। कारें भी कम नहीं थीं और अंग्रेज, एंग्लो-इंडियन तथा ईसाई नारियाँ पूर्ववत् बाज़ार कर रही थीं। फिर भी उसे लगा कि वह माल जो उसने देखी थी यह नहीं है। शरीर कुछ वैसा ही था, पर उसकी आत्मा झुलस रही है। लेकिन यह भी उसकी दृष्टि का दोष था। कम-से-कम वे जो वहाँ घूम रहे थे उनका ध्यान आत्मा की ओर नहीं था।

एकाएक वह पीछे मुड़ा। उसे रास्ता पूछने की जरूरत नहीं थी।

बैल की तरह उसके पैर डगर को पहचानते थे। आँखें इधर-उधर देख रही थीं। पैर अपने रास्ते पर बिना डगमगाए बढ़ रहे थे। और विश्व-विद्यालय की आलीशान इमारत एक बार फिर सामने आ रही थी। उसने नुमायश की ओर एक दृष्टि डाली, फिर वुलनर के बुत की तरफ़ से होकर वह अन्दर चला गया। उसे किसी ने नहीं रोका और वह ला कालेज के सामने निकल आया। उस समय उसका दिल एक गहरी हूक से टीसने लगा था। कभी वह इस कालेज में पढ़ा करता था........ वह काँपा, उसे याद आया, उसने इस कालेज में पढ़ाया भी है...... वह फिर काँपा। हूक फिर उठी। उसकी आँखें भर आईं। उसने मुँह फिरा लिया। उसके सामने वह रास्ता था जो उसे दयानन्द कालेज ले जा सकता था। एक दिन पंजाब-विश्वविद्यालय, दयानन्द-विश्वविद्या-लय कहलाता था......।

तब एक भीड़ उसके पास से निकल गई। वे प्रायः सभी शरणार्थी थे—बे-घर और बे-जर, लेकिन उन्हें देखकर उसका दिल पिघला नहीं, कड़वा हो उठा। उसने चिल्लाकर उन्हें गालियाँ देनी चाहीं। तभी पास से जाने वाले दो व्यक्ति उसे देखकर ठिठक गए। एक ने रुककर उसे ध्यान से देखा, दृष्टि मिली, वह सिहर उठा। सर्दी गहरी हो रही थी और कपड़े कम थे। वह तेजी से आगे बढ़ा। वह जल्दी-से-जल्दी कालेज-कैम्प में पहुँच जाना चाहता था। उन दो व्यक्तियों में से एक ने, जिसने उसे पहचाना था, दूसरे से कहा—"मैं इसको जानता हूँ।"

"कौन है ?"

"हिन्दू।"

साथी अकचकाया—"हिन्दू"

"हाँ, हिन्दू ! लाहौर का एक मशहूर वकील..." और कहते-कहते उसने ओवरकोट की जेब में से पिस्तौल निकाल लिया। वह आगे बढ़ा, उसने कहा—"जरूर यह मुखबिरी करने आया है।"

उसके बाद गोली चली। एक हलचल, एक खटपट-सी मची।

देखा एक व्यक्ति चलता-चलता लड़खड़ाया और गिर पड़ा। पुलिस ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया, परन्तु जो अनेक व्यक्ति उस पर झुक गए थे उनमें से एक ने उसे पहचाना और काँपकर पुकारा—"मिस्टर पुरी ! तुम ! तुम यहाँ, ऐसे...!"

मिस्टर पुरी ने आँखें खोलीं, उनका मुख श्वेत हो गया था और उस पर मौत की छाया पड़ रही थी। उन्होंने पुकारने वाले को देखा और धीरे से कहा—"हसन...हसन......!"

आँखें फिर मिच गईं। हसन ने चिल्लाकर सैनिक से कहा—"जल्दी करो ! टैक्सी लाओ। मेयो अस्पताल चलना है। अभी........"

भीड़ बढ़ती आ रही थी। फौज, पुलिस और होमगार्ड, सबने उसे घेर लिया। हसन जो उसका साथी था, जिसके साथ वह पढ़ा था, जिसके साथ उसने साथी और प्रतिद्वन्द्वी बनकर अनेक मुकदमे लड़े थे, वह अब उसे अचरज से देख रहा था। उसने एक बार झुककर कहा—"तुम यहाँ इस तरह क्यों आये, मिस्टर पुरी ?"

मिस्टर पुरी ने एक बार फिर आँखें खोलीं। वे धीमे स्वर में फुसफुसाये—"मैं यहाँ क्यों आया। मैं यहाँ से जा ही कहाँ सकता हूँ ? यह मेरा वतन है, हसन ! मेरा वतन......!"

१५ : : श्रीमती कमला चौधरी

अधूरा चित्र

(१)

महर्षि वाल्मीकि तीर्थ-यात्रा से लौटकर राम-नाम-गुण-गान करते हुए अपने आश्रम में प्रविष्ट हुए, तो उन्होंने देखा—एक घनी लता की ओट में पत्थर की शिला पर मस्तक नत किये हुए बैठी सीता आज एकाग्र मन से कुछ लिख रही है। कुतूहलवश मुनि वाल्मीकि उसी ओर को चल दिए और चुपचाप सीता के पीछे खड़े होकर देखने लगे। सीता के हाथ का बनाया हुआ एक अधूरा चित्र उसके सम्मुख है। हाथ में तूलिका लिये और चित्र में आँखें गड़ाए सीता बिलकुल स्तब्ध बैठी है। उस अधूरे चित्र के भावों में वह इस प्रकार डूब गई है कि उसे अपनी आँखों के आँसुओं की भी खबर नहीं है, जो लगातार झरने की भाँति झर रहे हैं।

महर्षि सीता की तन्मयता में बाधा न देकर मनोयोग से चित्र का निरीक्षण करने लगे। अयोध्या के महाराज रामचन्द्र एक विशाल यज्ञ-शाला में बैठे यज्ञ कर रहे हैं। उनके बाएं पार्श्व में सीता की स्वर्ण-प्रतिमा शोभित है और उनके चारों ओर बैठे हुए विद्वान्, योगी, मुनि और पुरोहितगण सीता के पक्ष का सम्पूर्ण कार्य उस प्रतिमा द्वारा सम्पन्न कर रहे हैं। देश-देशान्तर के राजे-महाराजे, योगी-मुनि, देवता-राक्षस, वानर, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी आमन्त्रित होकर आये हैं। और इन सब ही की आँखों में स्वर्ण-प्रतिमा कुतूहल की वस्तु बन रही

है। इसी एक विषय को लेकर मनन, चिन्तन, वार्तालाप, वाद-विवाद कानाफूसी और शोक, उपहास-निन्दा सभी-कुछ चल रहा है। विशेषकर स्त्रियों में ये कार्य बड़ी प्रबलता से चल रहे हैं। वृद्धा स्त्रियाँ बहू-बेटियों को पुरानी कथा सुनाकर स्वर्ण-प्रतिमा का इतिहास बता रही हैं। रावण के घर रहने के कारण सीता के चरित्र पर एक धोबी ने संदेह किया था, इसलिए रामचन्द्र ने सीता का परित्याग कर दिया; किन्तु उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। बिना स्त्री के भाग के यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हो सकता, अतः सीता की स्वर्ण-प्रतिमा के साथ वे यज्ञ कर रहे हैं। यज्ञ-वेदी के समीप ही महर्षि वाल्मीकि के साथ सीता के दोनों पुत्र लव और कुश आश्चर्य-चकित-से कभी सजल नेत्रों से उस प्रतिमा को देखते हैं, कभी चारों ओर मुँह घुमाकर आकुल दृष्टि से प्रत्येक के मन का भाव जानने की निष्फल चेष्टा करते हैं। जो कानाफूसी वे सुन रहे हैं, उससे वे दोनों बहुत ही व्याकुल और रुआसे-से हो गए हैं। बड़े परिश्रम से वे अपने हृदय के आवेग को रोके हुए इस प्रतीक्षा में हैं कि कब महर्षि अपने आश्रम में पहुँचें और कब वे उनसे अपने मन की शंका का समाधान करें। वहाँ का वातावरण उनके हृदय में एक रहस्य का अभास-सा करा रहा है, और वह आभास उनके कोमल-पवित्र हृदय में एक साथ हजार बिच्छुओं के दंशन-सी पीड़ा उत्पन्न कर रहा है। अथच धीर-गम्भीर बालक किसी प्रकार वह भारी मानसिक बोझ सँभाले बैठे यज्ञ-उत्सव देख रहे हैं। अन्तिम दृश्य यज्ञ-मण्डप से दूर वाल्मीकि के आश्रम का है। दोनों बालक एकान्त पाकर, विह्वल हो, मुनि के चरणों पर गिर पड़ते हैं और करुण चीत्कार करके मानो पूछते हैं—"बताओ, बताओ गुरुदेव, वह स्वर्ण-प्रतिमा क्या हमारी माता सीता की ही है ? ये हमारे कान क्या अब तक यज्ञ-मण्डप में अपनी ही माता की निन्दा सुन रहे थे ? बोलो गुरुदेव, बोलो, आपका महाकाव्य क्या हमारे ही माता-पिता के चरित्र का वर्णन है ? वह अग्नि-परीक्षा और

यज्ञशाला का यह वातावरण, हे गुरुदेव, इसमें क्या सत्य है और क्या असत्य....?"

यहीं पर सीता की तूलिका रुक गई है—मानो उसकी कल्पना-शक्ति ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया हो, मानो वह सीता के मनः-ताप का अनुभव करके भयभीत हो गई हो। इस ताप को शायद वह और प्रोत्साहन देना अब उचित नहीं समझती; कारण कहीं सीता के हृदय के दो टुकड़े न हो जायं! और कल्पना-शक्ति के साथ ही सीता के तन-मन और प्राण इस समय स्तब्ध हो गए हैं। वह ताप अपनी प्रबलता के कारण हृदय के बाँध को तोड़कर आँखों की राह बह रहा है। उस प्रबलता की धारा का अनुभव करने तथा उसे रोकने-बाँधने की सारी क्रियाएं मानो निष्फल हो रही हैं। सारी शक्तियाँ मानो उसी वेग में बही चली जा रही हैं। तपस्वियों में श्रेष्ठ वैरागी महर्षि वाल्मीकि भी उसी वेग में बहने लगे। किन्तु शीघ्र ही किसी प्रकार अपने को सँभालकर उन्होंने सीता को उबारने की चेष्टा की। बोले—"पुत्री सीते, इस प्रकार अधीर होकर यह कैसा चित्र बना रही हो?"

चौंककर सीता ने तूलिका हाथ से दूर फेंक दी और वाल्मीकि के चरणों पर गिरकर और भी विह्वल हो उठी। आशीष देते हुए मुनि ने सीता को उठाकर खड़ा किया और उसके मुँह की ओर देखा। उसकी हिरणी-सी काली आँखों में से अब जो सन्तप्त अश्रु-धारा गति की सीमा का उल्लंघन कर इस तरह बह रही थी मानो यह किसी प्रकार रुकना ही न चाहती हो। उसके गौर मुख पर छाई आरक्तता साफ बता रही थी कि यह क्रम न जाने कब से जारी है। सीता की उस समय की करुण मूर्ति और उसके हृदय की वेदनाओं का वह मार्मिक चित्र देखकर आदि-कवि वाल्मीकि भी उस समय सीता को सांत्वना देने के लिए वाणी और शब्दों का अभाव-सा अनुभव करने लगे। वे सीता का मस्तक अपने हृदय से लगाकर वार्धक्य से काँपता

हुआ अपना हाथ सीता के सिर पर फेरने लगे, जैसे अपने हृदय के सम्पूर्ण वात्सल्य से वे सीता के सर्वांग को नहलाकर उसके मन की सारी व्यथा, सारा सन्ताप, धो देंगे।

सामने चमकते प्रातःकल के सूर्य ने अपनी एक किरण महर्षि के मुख पर डालकर देखा, उनकी श्वेत पलकों के बीच में जल-कण छल-छला आए हैं। सूर्य स्तब्ध देखता रह गया, किन्तु उस वृद्ध-हृदय की सम्राज्ञी भक्ति-देवी त्रस्त हो उठीं। उन्होंने सरस्वती का आँचल झक-झोरकर कहा—"यह मूक रहने का अवसर नहीं है शारदे, शीघ्र अपनी प्रेरणा से काम लो, अन्यथा महा अनर्थ होना चाहता है। मेरा तो अस्तित्व ही मिटना चाहता है। मैं तेरी मनुहार करती हूँ, देवी!" वाणी ने भक्ति की यह मनुहार तो स्वीकार कर ली, किन्तु यह सोचने लगी—'अयोध्या-पति के अनन्य भक्त महाकवि के मन में आज अपने इष्ट के प्रति किंचित् विरसता उत्पन्न हुई है और मेरी सामर्थ्य कवि के हृदय-गत भावों को सुसज्जित शब्दों का बाना पहनाने तक ही सीमित है, उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करना या उनमें परिवर्तन करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है।'

वाणी की प्रेरणा से कवि स्वतः ही बोल उठे—"सीते, अयोध्यापति ने तुम्हारे साथ अन्याय किया है..." अभी वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि तड़पकर सीता ने अपने हाथ से महर्षि का मुख बन्द कर दिया। (महर्षि अपना वाक्य पूरा न कर पाए कि "वे तेरे प्रति कितने कठोर बन गए हैं। पुरुष-हृदय नारी के मन को समझने में असमर्थ है, फिर भी मैं आज बहुत-कुछ अनुभव कर रहा हूँ। मैं इसे सहन नहीं कर सकूँगा पुत्री, मेरा कवि होना व्यर्थ होगा यदि मैंने अपने महाकाव्य में तुम्हारी इस पीड़ा का वर्णन न किया।") सीता का हाथ छुड़ाते हुए कवि बोले, "जाओ सीता, मेरी लेखनी और भोज-पत्र तो ले आओ। मुझे अपने काव्य के कुछ अंश बदलने हैं।"

सीता वात्सल्य की भीख-सी माँगती हुई वाल्मीकि के हृदय से

और भी अधिक चिपटकर चीख उठी—"आप कुछ भी नहीं समझ सके, पिता। अयोध्यापति की सुकीर्ति सूर्य के समान प्रखर है, उनका चरित्र गंगाजल के समान निर्मल और पवित्र है। अयोध्यापति का हृदय जिस प्रकार दया के प्रति उदार और कोमल है, कर्तव्य के प्रति उतना ही विशाल और कठोर है। गुरु, उनकी कर्मनिष्ठा अपार है, और समुद्र के समान गहन। अयोध्यापति के गुण-गान करने ही में वाणी की महिमा है, उसी में कविता और कवि दोनों धन्य हैं। मुझे क्षमा करो, पिता, मेरे आँसुओं के कारण आज आपके मुख से स्नेह के कुछ अपशब्द निकल गए।" फिर महर्षि को झकझोरते हुए सीता ने ऐसे भावों की सरिता-सी बहा दी, मानो वह आनन्द से उतावली हो रही हो। भक्ति-देवी उस शुभ वेला पर सीता के प्रति कृतज्ञ हो उठी।

(२)

अबोध बालिका के समान जो माता के शरीर से चिपटकर दुलार से मातृत्व पर विजय पा ले, उसी प्रकार माया-मोह से रहित उस तपस्वी-हृदय पर सीता ने भी विजय पा ली। तपस्वी का क्रोध तो शान्त हो गया, परन्तु उसके स्थान पर वात्सल्यमयी एक पीड़ा का प्रादुर्भाव हो गया। सीता ने महर्षि के हृदय पर से उस पीड़ा को दूर करने के विचार से आँखों में प्रसन्नता भरकर हँसते हुए कहा—"एक सुख-संवाद मिला है पिता! मैं तो बहुत उत्सुकता से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी।"

सीता की चेष्टा व्यर्थ नहीं गई। महर्षि की सजल आँखें भक्ति और आनन्द की आभा से उद्दीप्त हो उठीं। वे बोले—"कैसा सुख-संवाद है? क्या अयोध्यापति का सुख-समाचार मिला है?"

"हाँ पिता, अयोध्यापति अश्वमेध-यज्ञ कर रहे हैं। आपके लिए निमन्त्रण आया है।"

हर्ष से महर्षि अपने महाकाव्य के राम-यश-वर्णन वाले प्रकरण का एक श्लोक गाने लगे और सीता भी उन्हीं के स्वर-में-स्वर मिलाकर

दुगुने उत्साह से गाती हुई अपनी तूलिका और चित्र उठाकर एक ओर भाग गई। महर्षि ओज-भरे स्वर से गाते हुए अपनी कुटी में रामायण खोलकर बैठ गए। लव और कुश महर्षि को आया जानकर भागे हुए आये और चरण-स्पर्श कर प्रणाम किया। महर्षि ने आशीष देकर उन्हें समीप बिठा लिया और रामायण कंठाग्र कराने लगे। किन्तु आज महर्षि अपने काव्य-रस में पूर्णतः तन्मय नहीं हो सके। वे अनुभव करने लगे—सीता ने उनके स्वर में जो स्वर मिलाकर गाया था, ऐसा जान पड़ता था मानो उसका सम्पूर्ण हृदय उस स्वर के साथ बाहर निकला आ रहा है। और वह अधूरा चित्र !

वाल्मीकि चिन्ता में डूब गए। दोनों बालकों को उन्होंने बाहर जाकर खेलने की आज्ञा दे दी। प्रबल इच्छा होते हुए भी बालक इस समय गुरु के मनोभाव को जानकर अश्वमेध-यज्ञ में जाने की बात न पूछ सके।

(३)

दोपहर के भोजन के निमित्त सीता जल से धोये हुए स्वच्छ कन्द-मूल-फल कदली-पत्र में लिये मुनि की कुटी में उपस्थित हुई। देखा, मुनि लेखनी हाथ में लिये लिखने में व्यस्त हैं। सीता ने आदर और प्रतिष्ठा के साथ मूल-फल मुनि के सम्मुख रखकर श्रद्धायुक्त मृदु-स्वर में कहा—"भोजन पा लें, पिता !" संकेत से सीता को समीप बैठने को कहकर अस्फुट वाणी में मुनि बोले—"आज मेरा निराहार व्रत है, सीता।" और मुनि उसी प्रकार व्यग्रता से लेखनी चलाने लगे।

मौन बैठी सीता पाँव के अँगूठे के नख से धरती किरोदती हुई सोचने लगी—'पिता ने आज व्रत क्यों किया ? आज मेरे कारण कवि के पुनीत और कोमल हृदय को जरूर कोई ठेस लगी है।' वह मन-ही-मन लज्जित होने लगी। गुरुदेव ने उसका चित्र भी तो देख लिया है। इसी तरह सोचते-सोचते बहुत-सा समय व्यतीत हो गया।

थोड़ी देर बाद लेखनी एक ओर रख दीर्घ निश्वास लेकर महर्षि

स्वतः कह उठे—"सम्पूर्ण !" सीता सहसा चौंक उठी। हाथ जोड़कर उसने प्रश्न किया—"क्या सम्पूर्ण, पिता ? क्या आपने अयोध्यापति के पवित्र चरित्र की कथा सम्पूर्ण कर ली ? पिता, मुझे उसे सुनने की प्रबल इच्छा है।"

आसन से उठते हुए महर्षि बोले—"हाँ, पुत्री मेरा काव्य आज सम्पूर्ण हो गया है। किन्तु पुत्री, तुम्हें सुनाने का अभी समय नहीं है। शीघ्र ही लव और कुश को बुलाकर मेरी यात्रा की तैयारी कर दो। अयोध्यापति द्वारा सम्पन्न होने वाले अश्वमेध-यज्ञ को देखने की मेरी प्रबल इच्छा है।"

सीता पाषाण की प्रतिमा की भाँति स्तब्ध खड़ी रह गई, जैसे उसमें कोई गति ही शेष न रह गई हो और अवाक् रह गए मुनि वाल्मीकि। उनके अश्वमेध-यज्ञ देखने जाने की बात से सीता के हृदय में किस प्रकार का आघात पहुँचा, यह जानने के लिए मुनि ने एक जिज्ञासापूर्ण दृष्टि सीता के अन्तर में डाली। उन्हें लगा, अयोध्यापति की यह परम-साध्वी-स्त्री सीता आज उनकी उस पुनीत योजना में सम्मिलित होने की अधिकारिणी नहीं है। आज यह पति-परायणा पति के दर्शनों से भी वंचित है। आज अयोध्या की स्वामिनी अयोध्या की प्रजा द्वारा ठुकराई जाकर निर्वासिता है। पर अधिक देर तक वाल्मीकि सीता के अन्तर में छिपे उस गहन-गम्भीर भाव-पारावार का भली-भाँति निरीक्षण नहीं कर सके। सीता ने तुरन्त ही अपने-आपको सँभाल लिया और मुनि का आदेश पालन करने के लिए विद्युत्-गति से भाग चली। अपने स्वर को पूरी गति पर पहुँचाकर वह चिल्लाने लगी—"ओ लव, ओ कुश, तुम दोनों कहाँ हो ? शीघ्र इधर आओ। देखो, गुरुदेव अश्वमेध-यज्ञ देखने जा रहे हैं। शीघ्र आओ, बालको; देर हो रही है। पिता तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

दूर से महर्षि ने देखा, बालकों को समीप आता देखकर भी सीता जोर-जोर से बोलती ही जा रही है। महर्षि जिज्ञासा और विश्लेषण

की बात भूल गए। कवियों में महाकवि और तपस्वियों में तपोश्रेष्ठ वाल्मीकि ने उस नारी-हृदय की वेदना के प्रति नतमस्तक होकर मन-ही-मन कहा—'सीता, तुम धन्य हो !'

कुछ ही क्षण बाद बालकों को यात्रा के लिए तैयार कर और अपने को प्रकृतिस्थ कर सीता मुनि के सम्मुख उपस्थित हुई और हाथ जोड़कर बोली—"पिता, आपका व्रत कब समाप्त होगा ? क्या आप निराहार ही यात्रा करेंगे ?" गम्भीरता से मुनि ने कहा—"पुत्री सीते, मैं अपने काव्य की परीक्षा करना चाहता हूँ। अब तो मैं इसकी सफलता का निर्णय करके ही जल ग्रहण करूँगा, ऐसा मेरा प्रण है। और यदि मैं इसमें असफल हुआ, तो इसे अग्निदेव के समर्पित कर दूँगा।"

सीता ने देखा, अन्तिम वाक्य कहते-कहते मुनि कुछ उत्तेजित और कुछ क्रोधित-से हो उठे हैं। तेज से उनका मुख रक्त-वर्ण हो गया है, आँखें उद्दीप्त हो उठी हैं। उनमें से एक प्रकार की दृढ़ता का प्रकाश निकल रहा था। सीता के मन पर आतंक-सा छा गया। 'पिता, किस प्रकार की परीक्षा लेना चाहते हैं,' यह पूछने का उसे साहस ही नहीं हुआ। मुनि आशीर्वाद देकर चलने को प्रस्तुत हो गए। सीता ने मुनि के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम करते हुए धीरे से कहा—"पिता, अयोध्यापति के चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन कीजियेगा और उनकी थाती, ये दोनों बालक, उन्हें सौंप दीजिएगा !" इतना कहते-कहते सीता का गला भर आया।

द्वार पर यात्रा के लिए तैयार खड़े दोनों पुत्रों को छाती से लगाकर सीता फफक-फफककर रो उठी। हृदय का सन्ताप मातृ-वात्सल्य के रूप में आँखों से फूटकर बहने लगा। स्नेह से सीता की पीठ पर हाथ फेरते हुए मुनि ने आदेश दिया—"पुत्री, अब तुम जाओ। सन्ध्या समीप आ रही है। पूजा की वेला भी हो आई।" बार-बार बालकों का मुख चूमकर सीता आँखें पोंछती हुई आश्रम की ओर लौट चली और आर्द्र-

कण्ठ तथा नयनों से महर्षि दोनों बालकों के साथ रामायण के श्लोक गाते हुए जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाने लगे।

(४)

यज्ञ-भूमि अयोध्या से भी सौ गुनी सुन्दर एक विशाल नगरी के रूप में सुसज्जित थी। आज उस नगरी का प्रातः और भी महत्त्वपूर्ण और चमत्कृत हो उठा था। सारे नगर का जन-समाज आज यज्ञ ही की नहीं, अपनी दैनिक दिनचर्या तक की बात भूलकर जहाँ-तहाँ चित्र-लिखित-सा खड़ा अपने कानों द्वारा अलौकिक संगीत-सुधा का पान कर रहा था। यहाँ तक कि अयोध्यापति भी एकाग्र मन से यज्ञ नहीं कर सके। चारों ओर से उमड़ती हुई जो मधुर संगीत-लहरी बढ़ी चली आ रही थी, सारे समाज की भाँति उनका चित्त भी उसी में डूबने-उतराने लगा। पुरोहितगण मन्त्र उच्चारण करना भूल गए। रामचन्द्र आहुति का पात्र हाथ ही में लिये उठ खड़े हुए। कदली-पत्र से सुसज्जित वातायन में से झाँककर उन्होंने देखा—साक्षात् कामदेव के अवतार-से दो बालक वीणा पर अपना मधुर स्वर झंकृत करते उसी ओर बढ़े चले आ रहे हैं और उनके पीछे-पीछे अपार जन-समुदाय उस संगीत-लहरी में डूबता-उतराता चला आ रहा है। राजा रामचन्द्र की दृष्टि उन बालकों की छवि का आभास पाकर मुग्ध हो गई। उस छवि में न जाने कैसा आकर्षण था कि उनका हृदय एकबारगी ही उन बालकों की ओर खिंचने-सा लगा। वह यज्ञ-जैसे महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान को भूलकर उन्हें देखने को खड़े हो गए।

भाई की यह दशा देखकर लक्ष्मण ने समीप आकर उनकी तन्मयता भंग की—"महाराज, कल संध्या-समय यज्ञशाला में महर्षि वाल्मीकि का शुभागमन हुआ है। ये दोनों बालक उनके शिष्य हैं। महर्षि ने एक महाकाव्य की रचना की है। उनकी आज्ञा से बालक उसी काव्य को चारों ओर घूम-घूमकर यज्ञ में आये अतिथियों को सुना रहे हैं। महर्षि वाल्मीकि कुछ अस्वस्थ हैं, इस कारण वे आज यज्ञ-मण्डप में

उपस्थित नहीं हो सके, अतिथि-गृह में विश्राम कर रहे हैं।" महाराजा रामचन्द्र ने वशिष्ठ मुनि तथा यज्ञ-वेदी पर बैठे हुए अन्य सारे मुनियों को सम्बोधित करके कहा—"आज्ञा हो तो आज यज्ञ-कार्य स्थगित कर महर्षि की काव्य-कला का और इन प्यारे बालकों के कोमल कण्ठ से स्फुटित हुई संगीत-मन्दाकिनी के रसामृत का पान किया जाय।" प्रसन्न-वदन से वहाँ एकत्रित सारे राजे-महाराजे और मुनियों ने राजा के प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

लक्ष्मण से बालकों को उनके पास भेजने का संकेत कर अस्वस्थ-से रामचन्द्र शयन-कक्ष में चले गए।

बालकों के मुख से वाल्मीकि-काव्य के बीस अध्याय सुनकर अयोध्यापति ने बालकों से अन्तिम अंश सुनने की आकांक्षा प्रकट की। बालकों ने रामचन्द्र को स्नेह में ओत-प्रोत कर देने वाली मृदुल वाणी में उत्तर दिया—"गुरुदेव ने अभी काव्य के अन्तिम अंश हमें कण्ठाग्र नहीं कराए हैं।" रामचन्द्र जो सत्रह सहस्र स्वर्ण-मुद्राएं उन्हें देना चाहते थे, बालकों ने नम्रतापूर्वक यह कहकर उन्हें लेने से इन्कार कर दिया—"हम वन के फल-मूल पर निर्वाह करने वाली वनवासिनी सीता के पुत्र हैं। ये स्वर्ण-मुद्राएं हमारे किस काम की?" और पृथ्वी पर माथा टेककर, रामचन्द्र को प्रणाम कर, दोनों बालक वाल्मीकि के समीप चले गए।

बालकों के अन्तिम शब्द रामचन्द्र के कानों में गूँजने लगे। वे व्यग्र होकर बोले—"हनूमान, मैं एकान्त चाहता हूँ।" हनूमान ने शयन-कक्ष के पट बन्द कर दिए और द्वार पर प्रतिहारी के आसन पर आकर बैठ गए।

कुछ समय उपरान्त राजा रामचन्द्र ने एक पत्र लेकर लक्ष्मण को महर्षि वाल्मीकि के समीप भेजा। पत्र पढ़कर मुनि पुलकित हो उठे और बोले—"लक्ष्मण, अयोध्यापति ने लिखा है, मैंने अपने काव्य में सीता के जिस सतीत्व के पराक्रम का वर्णन किया है, कल यज्ञ-मण्डप

में वे सीता द्वारा उसी का प्रमाण चाहते हैं। लक्ष्मण, तुम तुरन्त एक द्रुतगामी रथ की व्यवस्था करो, जिससे मैं शीघ्र-से-शीघ्र सीता को यहाँ ला सकूँ। और अयोध्या के महाराज से कह देना कि वे सारी अयोध्या की प्रजा, अपने सारे मानव-समाज, वानर-समाज, राक्षस-समाज, और सारे देव-समाज को भी एकत्रित करें। सबके सामने सीता प्रमाण देंगी।"

यह कहकर मुनि ने आश्रम के लिए प्रस्थान किया और लक्ष्मण प्रणाम करके भाई के समीप मुनि की आज्ञा सुनाने चले गए।

आश्रम में पहुँचकर मुनि ने देखा—मलिन वेश में, आँखें बन्द किए समाधिस्थ-सी बैठी सीता साधना में रत है। दिव्य दृष्टि से मुनि ने जाना—सीता ने निराहार रहकर तप द्वारा अपने प्राण छोड़ने का निश्चय किया है। उत्तेजना और आज्ञा-युक्त शब्दों से मुनि ने सीता की साधना भंग की—"उठो सीते! रामचन्द्र भरे समाज के बीच में तुम्हारे सतीत्व का प्रमाण चाहते हैं। तुम्हें अपने सतीत्व का प्रमाण देना ही होगा। देवि, चलो, अयोध्यापति का रथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।"

चौंककर मुनि को प्रणाम करते हुए सीता ने कहा—"किन्तु पिता, अग्नि-परीक्षा के उपरान्त सीता को अब फिर किसी प्रकार का प्रमाण देने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। आपकी दया से मैं माता के कर्तव्य से उऋण हो गई। अतएव अब मेरी प्राण रखने की अनिवार्यता भी समाप्त हो गई। आप बालकों को उनके पिता को सौंपकर मेरी ओर से क्षमा माँग लें। उनकी इस अन्तिम आज्ञा का मैं अब पालन नहीं कर सकूँगी।"

आग्रहपूर्वक वाल्मीकि बोले—"नहीं सीते, तुम्हें चलना ही होगा। यह तुम्हारी परीक्षा नहीं वाल्मीकि के तप की परीक्षा है, वाल्मीकि-रामायण की परीक्षा है। स्वाभिमान की वेदना को मैं जानता हूँ, किन्तु मेरे लिए तुम्हें उस पीड़ा को, जैसे भी हो, सहना ही होगा। अयोध्या

की प्रजा द्वारा ठुकराई हुई अयोध्या की महारानी भले ही फिर अयोध्या के राजा के रनिवास में जाना सहन न करे, पर वाल्मीकि के आश्रम ही के नहीं, हृदय के द्वार भी सदैव उसके लिए खुले हैं। पुत्री, तुम्हारे इस कष्ट-सहन से वाल्मीकि और वाल्मीकि-महाकाव्य धन्य हो जायगा।"

सीता अब और कुछ न कह सकी। कृतज्ञता के भार से दबी-सी वह रथ पर बैठ गई और मन-ही-मन मुनि को धन्यवाद देने लगी, जिनके द्वारा फिर उसे आर्यपुत्र के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होने जा रहा था।

(४)

प्रातः वेला में जब यज्ञ-मण्डप में बहुत बड़ी सभा एकत्रित हो गई, देवलोक से सारे देवता और गन्धर्व आदि भी आ गए, राजा रामचन्द्र आकर यज्ञ-वेदी पर बैठे। इस समय सभा में एक क्षणिक-सा कुतूहल होकर फिर गहरी स्तब्धता छा गई। सारे जन-समुदाय की आखें द्वार की ओर चली गईं। सबने देखा—तपस्वियों के शिरोमणि महाकवि वाल्मीकि एक हाथ में रुद्राक्ष की माला और दूसरे में गंगा-जली लिये चले आ रहे हैं। उनके पीछे पवित्रता की साक्षात् प्रतिमा-सी सीता वल्कल धारे मस्तक नीचा किये, धीरे-धीरे चली आ रही है। उसके मुख की कान्ति को सतीत्व का सत्य द्विगुणित कर रहा है। उसे देखकर सारे उपस्थित व्यक्तियों के हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठे। सबने सीता को मन-ही-मन प्रणाम किया। अयोध्यापति राजा रामचन्द्र मुख नीचा करके भूमि निहारने लगे। उन्हें मुनि के स्वागत में खड़े होकर प्रणाम करने का भी भान नहीं रहा।

उनके समीप आकर घनघोर गर्जना-सी करते हुए हाथ ऊपर उठाकर महर्षि वाल्मीकि ने कहा—"महापराक्रमी, महाबलशाली, गौरव-शाली, त्रिलोक के शिरोमणि रामचन्द्र, तुमने अपयश के भय से परम सती सीता का गर्भावस्था में परित्याग किया था और उसकी अग्नि-परीक्षा ले चुकने के बाद भी आज तुम इस विशाल समाज के बीच में उसके सतीत्व का प्रमाण चाहते हो? मैं गङ्गाजली हाथ में लेकर सीता

के सतीत्व का प्रमाण देता हूँ। मैंने घोर तपस्या की है, किन्तु मेरे अनन्त काल की सारी तपस्या तराजू के एक पलड़े में रख दी जाय और एक में सीता का सतीत्व, तो सीता ही का पलड़ा भारी रहेगा। यदि इस वचन में किंचित् भी असत्य या अतिशयोक्ति हो, तो मेरी आज तक की तपस्या का सारा फल नष्ट हो जाय, मेरी साधना भ्रष्ट हो जाय, जिस पवित्र जल को लेकर मैं यह सौगन्ध खा रहा हूँ, उस जल की धारा को मस्तक पर धारण करने वाले शंकर मुझे अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से भस्म कर दें।"

सारी सभा में साधुवाद का नाद गूँज उठा—और विह्वल-से रामचन्द्र मुनि के चरणों पर गिरकर बोले—"देव, मुझे क्षमा करो!"

"कल्याण हो!" कह मुनि ने सीता की ओर देखकर कहा "पुत्री, तुम्हें प्रमाण-स्वरूप जो-कुछ कहना हो, कहो। वाल्मीकि की इस आज्ञा से लक्ष्मण का मन विलख उठा। उन्होंने चाहा कि दौड़कर सीता के चरण पकड़ लें और कहें—माता अब क्षमा करो। माता कौशल्या ने चाहा कि भीड़ को चीरती हुई जाकर कुल को उज्ज्वल करने वाली पुत्र-वधू को हृदय से लगा लें। अयोध्या की प्रजा चीखने को हुई कि उसे अपनी महारानी से सतीत्व का प्रमाण नहीं चाहिए; उसका अपराध क्षमा हो। पर सीता ने किसी को पलक मारने तक का अवकाश नहीं दिया और मन-ही-मन रामचन्द्र को प्रणाम करके और पृथ्वी को सम्बोधित करके बोली—"माता, अपने पातिव्रत में यदि मैं तेरे ही समान अचल रही हूँ तो तू मेरी लज्जा और मर्यादा को अचल रखने के लिए मुझे अपने भीतर स्थान दे।"

भयंकर गर्जना के साथ पृथ्वी फटी और उसमें से एक दिव्य-सिंहासन प्रकट हुआ। देवी पृथ्वी ने स्वयं सीता को उठाकर उस दिव्य-सिंहासन पर बिठा लिया और वह सिंहासन पृथ्वी में चला गया। सारे देव, नर, किन्नर, वानर और महान् शक्तिशाली रामचन्द्र भयभीत-से देखते रह गए सीता के प्रचण्ड सतीत्व-सन्ताप की उस महिमा को!

लेखक-परिचय

१ : : चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

आधुनिक हिन्दी-गद्य के निर्माताओं में प्रमुख होते हुए भी गुलेरी जी प्रधानतया कहानीकार नहीं थे। संस्कृत भाषा और साहित्य के अच्छे ज्ञाता होने के कारण उनके विषय अधिकांश में इतिहास, भाषा और आलोचना होते थे! उन्होंने कुछ स्फुट कविताएं तथा वस्तु-प्रधान एवं भाव-प्रधान निबन्ध भी लिखे थे। उन्होंने बहुत ही कम कहानियाँ लिखीं, तथापि उनकी जितनी भी कहानियाँ उपलब्ध होती हैं, उन सबमें नई कल्पना, अनोखी सूझ तथा नूतन विचार-धारा की झाँकी हमें देखने को मिलती है। उनके जोड़ की कहानियाँ साहित्य में बहुत ही कम हैं!

'उसने कहा था' शीर्षक उनकी यह कहानी बहुत ही प्रसिद्ध हुई। समाज के अन्तर्जगत् का चित्रण करने के साथ ही उन्होंने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को भी बड़ी चतुराई से व्यक्त किया है। उनके चरित्र-चित्रण में बड़ी मार्मिकता देखने को मिलती है। भाषा में ओज और प्रवाह है, तथा उनकी शैली में विचित्र चलतापन भी है। मुहा-वरों और लोकोक्तियों का ऐसा सामयिक एवं उपयुक्त प्रयोग यदा-कदा ही देखने को मिलता है।

२ : : जयशंकर 'प्रसाद'

साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से पूर्ण सफलता प्राप्त कर अपनी अमर कृतियों द्वारा उन्हें पल्लवित करने वाले इने-गिने साहित्यकारों में प्रसादजी का प्रमुख स्थान है। अपूर्व प्रतिभा,

अगाध पाण्डित्य एवं अद्वितीय कल्पना को लेकर वे हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुए थे। जिस सफलता एवं पटुता के साथ उन्होंने काव्य-रचना की, उसी तन्मयता एवं साधना के साथ वे कहानी, उपन्यास और नाटकों के क्षेत्र में भी आए। उनके गहरे ज्ञान, गम्भीर विचारों तथा एकान्त साहित्य-साधना की छाप उनकी सभी रचनाओं पर दीख पड़ती है।

प्रसादजी ने कई कहानियाँ लिखीं। कला, भाव और भाषा सभी दृष्टियों से प्रसादजी की कहानियाँ सफल हुईं। परन्तु प्रसादजी मुख्यतः कवि थे, अतएव उनकी कहानियों में कल्पना तथा भावना का प्राचुर्य अधिक एवं यथार्थ अनुभूति कुछ कम दिखाई देती है। उनके उपन्यासों की तरह उनकी बहुत-सी कहानियों के विषय सामाजिक ही हैं तथापि उनकी कई कहानियाँ ऐतिहासिक घटनाओं की पृष्ठभूमि को लेकर लिखी गईं, जिनमें उस काल के वातावरण एवं भावनाओं को सजग करने में प्रसादजी को पूरी सफलता मिली है। मुगलकालीन इतिहास की एक सामान्य-सी घटना को लेकर प्रसादजी ने 'ममता' शीर्षक अपनी इस कहानी में भारतीय नारी की भावनाओं तथा भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण परम्परा का जो मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया वह हिन्दी-साहित्य की विशेष वस्तु है।

२ : : प्रेमचन्द

हिन्दी भाषा के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार प्रेमचन्दजी का स्थान कहानी-लेखकों में भी सर्व-प्रथम ही है। उच्चकोटि के अनेकों उपन्यासों के साथ ही उन्होंने सैकड़ों कहानियाँ भी लिखीं। प्रेमचन्दजी के उपन्यासों और कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि जिस वातावरण में वे लिखते थे उसमें आकण्ठ-निमग्न होकर ही लिखते थे। प्रेमचन्दजी ने जिस समाज का चित्र अंकित करने का बीड़ा उठाया था वह प्रधानतया दीन, ग्राम-निवासी या निम्नतर मध्यम वर्ग ही था।

और अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में उन्हें पूरी-पूरी सफलता मिली है।

उनकी कहानियों तथा उपन्यासों को पढ़ते हुए पाठक भी पात्रों से तादात्म्य स्थापित कर स्वयं भी उसी वातावरण में रमता-सा अनुभव करने लगता है। पुनः अपनी कहानियों में उन्होंने जिन घटनाओं को चित्रित किया है वह सर्व-साधारण के जन-जीवन में नित्य घटने वाली और बहुत ही स्वाभाविक बातें हैं जो साधारण पाठक के हृदय को भी छू लेती हैं। प्रेमचन्दजी की सफलता एव लोकप्रियता का रहस्य इन्हीं विशेषताओं में निहित है। अपनी रचनाओं में प्रेमचन्दजी ने भाषा का अत्यन्त चलता रूप ही अपनाया है जिससे वह हृदय-ग्राही और स्वाभाविक भी बन गई है।

'पूस की रात' शीर्षक कहानी में प्रेमचन्दजी ने एक कृषक परिवार के जीवन का चित्र अंकित करके साधारण किसान की कठिनाइयों, वेदना एवं उसके हृदय में होने वाले अन्तर्द्वन्द्व का जो विवरण प्रस्तुत किया है वह बहुत ही मार्मिक है। 'जबरा' कुत्ते का वर्णन इतना सजीव एवं स्वाभाविक है कि उसके लिए भी प्रेमचन्दजी की सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता।

४ :: विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

साधारण जन-जीवन की घटनाओं को लेकर सीधी-सादी भाषा में सामाजिक या कौटुम्बिक समस्याओं पर भावपूर्ण रोचक कहानी लिखने की प्रेमचन्दजी की परम्परा का सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने वालों में कौशिकजी प्रमुख थे। उनकी कहानियों में भी ये ही सारी विशेषताएं अपने विशिष्ट स्वरूप में दीख पड़ती हैं।

कौशिकजी ने भी कोई सो के लगभग कहानियाँ लिखीं, जिनमें विशेप ख्याति-प्राप्त 'ताई' कहानी यहाँ दी जा रही है। उसमें उन्होंने रामेश्वरी और मनोहर के जैसे स्वाभाविक तथा भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किये हैं उन्हें पढ़कर यह अनुभव किये बिना नहीं रहा जाता कि

उन-जैसे अनेक व्यक्ति आज भी हमारे परिवारों में विद्यमान हैं।

५ : : राय कृष्णदास

सफल गद्य-काव्यकार तथा कलाओं को परख सकने वाला पर्य-वेक्षक जब स्वयं कहानी-लेखक बन जाता है तब इन दोनों प्रवृत्तियों का प्रभाव उसकी कहानी की कला, एवं शैली आदि पर पड़े बिना नहीं रह सकता। यही कारण है कि राय साहब की कहानियों में भी यत्र-तत्र गद्य-काव्य का-सा आनन्द अनुभव होता है, और उनके कथानकों में कला और शोध के पारखी एवं प्रेमी की भावनाओं की छाया दृष्टि-गत होती है। राय साहब एक सुकवि भी हैं जिससे उनकी रचनाओं में भावुकता और अनुभूति प्रचुर मात्रा में पाई जाती है।

आदि मानव के जीवन में परिवारों के प्रारम्भ होने तथा वहाँ पुरुष द्वारा स्त्री के विशेष संरक्षण की परम्परा के आकस्मिक उद्गम की घटना को राय साहब ने 'अन्तःपुर का आरम्भ' कहानी में चित्रित किया है।

भाषा परिमार्जित और मार्मिक होते हुए भी कठिन नहीं है। शैली में प्रवाह और आकर्षण भी है जो कहानी के कथानक की नूतनता में चमत्कार भर देता है।

६ : : भगवतीप्रसाद वाजपेयी

वाजपेयीजी प्रधानतया कहानीकार हैं। उन्होंने जीवन को बहुत ही गहराई में जाकर निकट से अनुभव किया है। यों उनकी कहा-नियों में बहुत-कुछ आप-बीती होने के साथ ही सीधे समाज से लिये गए कई ऐसे चित्र भी मिलते हैं, जो उसके अणु-अणु में समाई विडम्बना को भी सुस्पष्ट कर देते हैं।

'मिठाई वाला' उनकी वैसी ही कहानियों में से है। अपना सारा हरा-भरा कुटुम्ब नष्ट होने पर वही युवा घर-घर के बालकों में अपने

प्यारे बच्चों को पाकर परम सन्तोष एवं अवर्णनीय सुख का अनुभव करता है। प्रेरणा की दृष्टि से भी कहानी सुन्दर है। इसे पढ़कर महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की सुप्रसिद्ध कहानी 'काबुली वाला' का स्मरण हुए बिना नहीं रहता।

७ : : जैनेन्द्रकुमार

यद्यपि इधर कुछ वर्षों से जैनेन्द्रजी अपनी विवेचनाओं तथा गम्भीर विचार-विश्लेषण के लिए सुविख्यात हो गए हैं. परन्तु उनके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ एक अद्‍भुत शैली वाले कहानी-लेखक एवं गहरी मनोभावनाओं को व्यक्त करने वाले सुकुशल उपन्यासकार के रूप में हुआ था। मनोभावों को चित्रित करके अन्तर्जगत् में चल रहे मानसिक द्वन्द्व की विवेचना करने में जैनेन्द्रजी ने विशेष चतुराई दिखाई है और उनके उपन्यास तथा गल्प-संग्रह हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

'एक गौ' कहानी में उन्होंने हरियाना के एक किसान-परिवार में पली हुई गाय को लेकर मानव ही नहीं पशु के आन्तरिक भावों का सुन्दर चित्रण किया है जो मार्मिक होते हुए भी बहुत ही स्वाभाविक एवं सत्य है।

८ : : भगवतीचरण वर्मा

जिन प्रतिभाशाली साहित्यकारों ने साहित्य के विभिन्न अंगों की समान रूप से अभिवृद्धि की है, उनमें वर्मा जी का स्थान बहुत ही ऊँचा है। वे भावपूर्ण हृदयवादी कवि होने के साथ ही सफल उपन्यासकार एवं कुशल कहानी-लेखक भी हैं। जीवन के विभिन्न पक्षों का सम्यक् प्रकारेण दिग्दर्शन कराना तथा मानवीय भावों को समझकर उन्हें चित्रित करना ही वर्माजी की कला का प्रमुख उद्देश्य है।

वर्माजी की भाषा सरल और सरस होती है एवं शैली हृदय-स्पर्शी

एवं भाव अत्यन्त गम्भीर होते हैं। उनका कटु व्यंग कई स्थानों में उपहास की सीमा तक पहुँचकर भी किसी भी प्रकार अस्वाभाविक या असत्य नहीं हो जाता।

'मुग़लों ने सल्तनत बख्श दी' शीर्षक कहानी में इस बात का बहुत ही मार्मिक व्यंगपूर्ण सांकेतिक वर्णन किया गया है कि वास्तविकता को समझते हुए एवं अपनी विवशता का पूर्ण अनुभव करते रहने पर भी किस प्रकार नाम-मात्र के मुग़ल सम्राट् अपनी सार्वभौम सत्ता का ढकोसला बनाए रखते रहे और यही ऊपरी दिखावा चलाते गए कि ये विदेशियों का फैलता हुआ अधिकार भी उनके ही आदेशानुसार चलता जा रहा था।

६ : : श्रीराम शर्मा

'विशाल-भारत' के सफल सम्पादक एवं उत्तर प्रदेश के सुप्रसिद्ध राजनैतिक कार्यकर्ता श्री श्रीराम शर्मा प्रधानतया अपने 'शिकार-साहित्य' के लिए सुज्ञात हैं। उनकी लेखनी में ओज, शैली में नूतनता तथा भाषा पर पूर्ण अधिकार है।

स्वयं सिद्धहस्त शिकारी होने के साथ ही शर्माजी ने अन्य विदेशी भाषाओं में प्राप्य शिकार-सम्बन्धी साहित्य भी बहुत पढ़ा है। यही कारण है वे जंगल की घटनाओं और शिकार से सम्बद्ध अन्य विशेषताओं का सरलता के साथ वर्णन कर सकते हैं।

फ्रांस के अधीन अफ्रीका के प्रदेश में भाले के द्वारा सिंहों के शिकार का जो सजीव वर्णन शर्माजी ने अंग्रेजी ग्रन्थ के आधार पर 'नायक का चुनाव' शीर्षक कहानी में किया है वह ज्ञानप्रद होने के साथ-साथ स्फूर्ति और प्रेरणा देने वाला भी है।

१० : : सुभद्राकुमारी चौहान

'झाँसी की रानी' कविता की अमर कवयित्री के उत्कट देश-प्रेम

और संलग्नतापूर्ण समाज-सेवा से कौन परिचित नहीं। उनके जीवन का अधिक समय ऐसे ही कार्यों में बीता था। परन्तु राजनैतिक संघर्षों तथा सार्वजनिक जीवन में व्यस्त रहते हुए भी वे पारिवारिक समस्याओं के समाधान के प्रति पूर्णतया जागरूक तथा तदर्थ सदैव तत्पर रहती थीं।

कवयित्री होने के साथ-ही-साथ वे सफल कहानी-लेखिका भी थीं। उनकी लिखी कहानियों की संख्या अधिक नहीं, परन्तु वे उच्च कोटि की अवश्य हैं।

नारी-हृदय में निहित त्याग और सेवा-भाव की सुन्दरतम झाँकी 'गौरी' कहानी में मिलती है। उल्लास, विलास और सुख का प्रशस्त मार्ग सब तरह से खुला होते हुए भी त्याग, सेवा और साधना की ओर स्वतः आकर्षित होने वाली अनेकों 'गौरी' की-सी कन्याएं आज भी हमारे समाज में विद्यमान हैं।

११ : : उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

उर्दू-भाषा-भाषी प्रदेश में जन्म लेकर तथा सफल उर्दू-साहित्यकार होते हुए भी प्रेमचन्दजी के समान 'अश्क' ने हिन्दी-साहित्य-भण्डार को अनुपम कृतियों द्वारा भरपूर बनाया है। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी रही है; कहानी, कविता, नाटक और उपन्यास सब ही क्षेत्रों में उन्हें समान रूप से सफलता प्राप्त हुई। हिन्दी में एकांकी नाटकों के प्रचालकों में भी उनका प्रमुख स्थान है।

'डाची' शीर्षक कहानी में बाकर नामक जिस पात्र को उन्होंने हमारे सामने खड़ा कर दिया वह साधारण होते हुए भी सजीव और भावपूर्ण है। वातावरण में डूबकर उसका जीता-जागता चित्रण करके अत्यावश्यक पृष्ठभूमि तथा प्रभाव प्रस्तुत करने में उनकी सफलता यहाँ पूर्णतया चित्रित हो गई है। बाकर का भावोल्लास, उसकी विवशता तथा रजिया के सो जाने से पहले घर लौटने की उसकी

झिझक लेखक की गहरी अनुभूति का प्रमाण देती है।

१२ : : होमवती देवी

वैधव्य के दुर्वह भार से आक्रान्त जीवन-पथ पर अग्रसर होती हुई इस देवी के स्वर में मानव-वेदना की दर्द-भरी तान गूँजने लगी और काव्य-धारा फूट निकली; तथा धीरे-धीरे अपने भाव-चित्रों के अधिक विस्तृत चित्रण की प्रेरणा ने उन्हें कहानी-लेखिका भी बना दिया। अत्यन्त परिष्कृत विचार-धाराओं की इस सम्भ्रान्त महिला का सारा जीवन ही साहित्य तथा सेवा-कार्य में बीतता था।

उनकी कविताओं में पाई जाने वाली पीड़ा और कसक उनकी कहानियों में सहज सहानुभूति तथा संवेदना का स्वरूप ले लेती थी। उनकी कहानियों में मध्यम वर्ग के पारिवारिक जीवन का जो चित्रण मिलता है वह बहुत ही सजीव तथा अनुभूतिपूर्ण है।

'माँ' शीर्षक कहानी में मातृ-विहीन बालक के जीवन का हृदय-द्रावक वर्णन मिलता है। नारी-हृदय की भावनाओं एवं उसके उतार-चढ़ाव को भी उसमें बड़ी ही कुशलता के साथ चित्रित किया गया है।

१३ : : रामचन्द्र तिवारी

स्वयं सफल वैज्ञानिक होते हुए भी आप साहित्य-साधना की ओर आकृष्ट हुए तथा इस चेतना-युग के प्रहरी कहानी-लेखकों में अपना विशेष स्थान बना चुके हैं। असमतापूर्ण आक्रान्त जन-समुदाय के भविष्य को उज्ज्वल बनाने का सपना देखने वाले साहित्यकारों में तिवारी जी भी हैं। हिन्दी में वैज्ञानिक कहानियाँ लिखने का भी उन्होंने सफल प्रयोग किया है।

'पिशाची कारा' शीर्षक कहानी में उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दंगों की पृष्ठ-भूमि पर आधारित मातृ-हृदय का एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। समाज के बंधनों से जकड़े हुए एवं न पटने वाली धार्मिक विभिन्नता

की खाई के फलस्वरूप उत्पन्न हुई वृद्धा रामप्यारी की विवशता हृदय में उथल-पुथल मचाए बिना नहीं रहती।

१४ : : विष्णु प्रभाकर

नई पीढ़ी के प्रमुख कहानी-लेखकों में विष्णु जी का महत्त्वपूर्ण एव उच्च स्थान है। मानव-जीवन का सूक्ष्म दर्शन तथा उसकी चातुर्य-पूर्ण विवेचना ही उनकी कहानियों की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं।

राष्ट्रीय विचार-धारा के प्रतिनिधि-लेखक के रूप में उन्होंने साहित्य की विशेष सेवाएं की हैं एवं उनकी कहानियों में भी उसी विचार-धारा का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ना स्वाभाविक ही है। परन्तु समाज में प्रचलित शोषण और उत्पीड़न के प्रति विद्रोह भी उनकी कहानियों में यत्र-तत्र दीख पड़ता है।

धार्मिक आधार पर भारत का राजनैतिक विभाजन होने पर भी सदियों से चली आई परम्परा एवं युगों के स्मृति-बन्धन किस प्रकार सुदृढ़ तथा अकाट्य बने रहते हैं इसका बहुत ही हृदय-द्रावक चित्रण 'मेरा वतन' शीर्षक कहानी में किया गया है।

१५ : : कमला चौधरी

हिन्दी की महिला कहानी-लेखिकाओं में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। अपने जीवन में, घर पर या बाहर किये गए अनुभवों को वे अपनी कहानियों में अंकित कर देती हैं। मानवीय मनोभावों के उतार-चढ़ाव तथा सामाजिक जीवन की समस्याओं का सूक्ष्मता के साथ पर्यवेक्षण करना आपकी विशेषता है। अपनी कहानियों में उन्होंने प्रधानतया भारतीय गार्हस्थ्य जीवन के चित्र प्रस्तुत किए हैं

रामायण-काल की घटना को लेकर लेखिका ने सीता के चरित्र का जो चित्रण किया है वह अनुपम और हृदयग्राही है।

भाषा सरल होते हुए भी सरस एवं प्रभावशाली है।